कवर
तुरन्त भुगतान की गारंटी
र्थ ड्रा 8-2-89
क एजेन्सीज प्रा. लि.
म्बई-3 फोन-324677,324827,
शिलांग
य सरकार, शिलांग
PRICE

उद्‌घाटन एक यात्रा का

[एकांकी—संकलन]

: रचयिता :

डॉ० बद्रीप्रसाद पंचोली

: वितरक :

अर्चना प्रकाशन, अजमेर

उद्घाटन एक यात्रा का

* रचयिता एवं प्रकाशक

डॉ० बद्रीप्रसाद पंचोली

* प्रथम संस्करण १९७५
* मूल्य : चार रु० मात्र

वितरक :

अर्चना प्रकाशन १, कालाबाग, अजमेर (राज०)

*

मुद्रक :

अर्चना प्रकाशन
१, कालाबाग, अजमेर (राज०)

अनुक्रम

प्रस्तुति

'उद्घाटन एक यात्रा' शीर्षक इस संकलन में डॉ० बद्रीप्रसाद पंचोली के सात एकांकियों को प्रकाशित किया जा रहा है। डॉ० पंचोली राजस्थान के जाने-माने नाटककार हैं। उनके एक दर्जन से अधिक नाटक प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें कथानक की मौलिक उद्‌भावना तो है ही शैली और अभिनेयता की दृष्टि से भी अनेकधा नवीन प्रयोग देखने को मिलते हैं। उनके कितने ही एकांकी अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये हैं। प्रस्तुत संकलन में संगृहीत सभी एकांकी यत्र-तत्र प्रकाशित हो चुके हैं। इन एकांकियों में लेखक का उद्देश्य मानव के सांस्कृतिक विकास के किसी पहलू को प्रस्तुत करना रहा है। प्रारम्भ के तीन एकांकी इतिहास-पुराण के सन्दर्भों को लेकर लिखे गये हैं। 'अभिशप्ता' में लेखक का यह कथन कि 'श्रम ही वह शक्ति है जो स्नेह के सभी बन्धनों को घनिष्ठ करती है' श्रम के महत्त्व को प्रतिपादित करता है। 'समझौता' एकांकी में आचार्य महानाम का आत्म विसर्जन किस तरह एक निर्मम विद्रोही राजकुमार से समाज की रक्षा करता है इस घटना का उल्लेख है। 'रूप की महिमा' एकांकी में इस तथ्य की ओर संकेत है कि यदि राम का रूप बनाने मात्र से रावण के मन में सीता के प्रति दुर्विचार नष्ट होकर सम्मान की भावना पैदा हो जाती है तो राम जैसे गुणवान् बनने से समाज का कितना हित हो सकता है? अन्तिम चार एकांकी आधुनिक विषयों से सम्बन्धित हैं। इनमें आधुनिक जीवन की विसंगतियों की ओर संकेत है। घटती हुई सांस्कृतिक आस्था, बढ़ती हुई व्यक्ति निष्ठा, बाह्याडम्बर, वैयक्तिक कुंठाओं को छुपाने का प्रयत्न और इसी तरह को न जाने कितनी समस्याओं की ओर इन एकांकियों में संकेत है। इनमें अन्यथा प्रकार से एकांकीकार ने सांस्कृतिक निष्ठा से जुड़ने के लिये प्रेरणा दी है। एकांकीकार की कुछ मान्यताएँ 'विचार बिन्दु' के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। आशा है लेखक के विचारों और एकांकियों का सुधी पाठक स्वागत करेंगे।

विद्या बंसल
मंत्री
अर्चना प्रकाशन, अजमेर

विचार बिन्दु

कार्य करने की अनन्त सम्भावनाओं का नाम आशा है। आशा ज्योति है और निराशा अन्धकार—यह उक्ति बहुधा दुहराई जाती है। आशा कर्म का प्रवेश द्वार है, दिव्योत्साह की जननी है। कर्म-मार्ग को त्याग कर ज्ञान का आश्रय लेने वाले, 'नैराश्यं परमं सुखम्' सूत्र को अपने जीवन का आधार बनाते हैं, परन्तु आशा से मुक्त वे भी नहीं होते। आशा जीवन-शिशु का क्रीडांगण है। उसके बिना मनुष्य जीते हुए भी मृतवत् हो जाता है।

निघंटु में आशा की परिगणना दिङ्नामों में की गई है। वेदों में आशा शब्द का प्रयोग दिशा अर्थ में हुआ भी है। अथर्ववेद में एक प्रार्थना है:—

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।
(अर्थात् सब दिशाएँ मेरी मित्र हो जायें।)

सब दिशाओं को मित्र बनाने की कामना बड़ी महत्वपूर्ण प्रतीत हो सकती है, परन्तु इस उक्ति का यह तो बहुत ही स्थूल अर्थ है। आज चिन्तन की धारा बदल जाने से आशा, दिशा आदि शब्दों के वास्तविक अर्थ खो से गये हैं। यदि इन शब्दों के मंत्रसामर्थ्य की खोज करें तो हमारे जीवन में प्रेरणा की नवीन पगडंडियाँ खुल जाती हैं। आज हम राजमार्गों पर चलने के आदी हो गये हैं। इसलिए राजमार्गों को ही खोजते हैं और राजमार्ग न मिलने पर निराश हो जाते हैं, परन्तु राजमार्ग सर्वत्र तो हो नहीं सकते। हाँ, मनुष्य का पुरुषार्थ साधारण पगडण्डियों को भी राजमार्ग बनाने में समर्थ हो सकता है अथवा पगडंडियों का इस तरह उपयोग कर सकता है कि राजमार्ग से भी अधिक वे लक्ष्यसिद्धि में सहायक हों।

वनों और पर्वतों से घिरी हुई ऊबड़खाबड़ भूमि जिसमें प्राणियों ने अपनी सामर्थ्य से अनन्त पगडण्डियों का जाल बिछा कर अपने चरणचिह्न अंकित किये हैं, देश कहलाता है। देश नाम भूखण्ड का नहीं है उस पर रहने वाले मनुष्यों के पुरुषार्थ का—कर्मकौशल का है। दिश् धातु का प्रयोग अति-सर्जन अर्थ में होता है। जहाँ मनुष्य कर्म के लिए स्वयं को समर्पित कर सके उसे ही देश कहते हैं। दिशा देश के प्रान्त विशेष का नाम है। जितनी

पगडण्डियाँ हो सकती हैं, उतनी ही दिशाएँ मानी जा सकती हैं। मनुष्य जिस स्थान पर खड़ा है वह स्थान ही पृथ्वी का केन्द्रबिन्दु है और उसके कर्म-यज्ञ की वेदी है। इस गोल पृथ्वी पर वहाँ से किसी भी दिशा में चल दे, अन्ततोगत्वा चलने वाला उसी स्थान पर पहुंच जायगा। इसी तरह कर्म को कहीं से हाथ में लिया जाय, तल्लीन होकर करने पर मनुष्य उसे सफल बना देता है। इसी तरह कर्म को सफल बनाने के—लक्ष्य सिद्धि के, अपरिमित उपाय हो सकते हैं। उन उपायों को ही दिशा या आशा कहा जाता है।

कर्म-साधन की संज्ञा धन भी है। आशा को अमर-धन कहा जाता है। मृत्यु से आशा नहीं टूट जाती। उसका जीवन की अनन्तता में विस्तार हो जाता है। यह उचित ही कहा गया है कि जन्म-जीवन का प्रारम्भ नहीं है और न मृत्यु जीवन का अन्त। जन्म और मृत्यु के साथ जीवन-पुस्तक के एक परिच्छेद का प्रारम्भ व पटाक्षेप मात्र होता है। परिच्छेद-परिवर्तन में आशा का तन्तु सर्वत्र विद्यमान रहता है। शत-सहस्र मनुष्य व्यक्तिश: कर्म के पृथक्-पृथक् मार्ग अपना सकते हैं, आशा का सूत्र उन सबमें विद्यमान होगा। जीवन का सौन्दर्य कर्म की एक दिशा में न होकर अनन्त दिशाओं में ही प्रस्फुटित होता है। सौन्दर्य स्वतन्त्रता का सहचर है। कर्म-सिद्धि की एक ही सम्भावना या दिशा हो तो कर्म-साधक विवश होकर उसको अपनायेगा और स्वतन्त्रता से उसका साक्षात्कार नहीं हो पायेगा। अत: वह उससे वंचित रह जायगा। इस तरह उसके जीवन में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। सौन्दर्य की प्रतिष्ठा न होने पर सत्यता और शिवत भी जीवन से दूर हो जाती है। इन ईश्वरीय विभूतियों से वंचित होने पर जीवन में उस भगवत्ता का विकास नहीं हो सकता, जिसे जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है।

स्वामी विवेकानन्द ने एक बार इस बात पर गर्व प्रकट किया था कि भारतवर्ष में उपास्यदेवों की संख्या करोड़ों है। उन्होंने कहा था कि ससार में जितने मनुष्य हैं यदि उतने ही उपास्यदेव और धर्म हों तो यह अच्छी बात होगी। जब मनुष्य धर्म और सम्प्रदाय की रूढियों में फंसकर अन्य मनुष्यों से घृणा करने लगता है तब बरबस हँसी आ जाती है उसकी मूर्खता पर। ऐसा

करके वह विविधता में निहित सौन्दर्य को नहीं देख पाता। असुन्दरता से अंधा हो जाने पर सुन्दरता का शुभदर्शन कैसे हो सकता है? ईशोपनिषद् में कहा गया है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये। (ईश० १५)

सत्य पर सौन्दर्य का आवरण चढ़ा हुआ है। पारदर्शी चक्षु ही सौन्दर्य में से सत्य का साक्षात्कार कर सकते हैं। हितकारी और रमणीय हिरण्य कहलाता है। सौन्दर्य विविधता में है और विविधता मनुष्य के लिए हितकारी व रमणीय होती है। एथेन्स के सत्यार्थी की कहानी प्रसिद्ध है कि वह सत्य को नग्न देखने के प्रयत्न में अंधा हो गया था। वस्तुतः कर्म की अनन्त संभावनाएँ ही मनुष्य को स्वतन्त्र बनाती एवं सौन्दर्य का साक्षात्कार कराती हैं।

परतंत्रता मृत्यु है, असुन्दरता मृत्यु है, निराशा मृत्यु है, स्वतंत्रता, सौन्दर्य और आशा में अमरता का रहस्य छुपा हुआ है। क सुन्दरता का नाम है (क कमनीयो भवति), ख रिक्तता का नाम है—दोनों ही ब्रह्म हैं. कं ब्रह्म, खं ब्रह्म। विविधता ही सुन्दरता है; असीमता ही रिक्तता है। आकाश को ख कहा जाता है। इसमें निहित अनन्त ब्रह्माण्ड अपनी विविधता के कारण सुन्दर कहलाने के अधिकारी हैं। सभी ब्रह्माण्ड देव के अविनाशी काव्य हैं। उनकी शाश्वतता और सुन्दरता विविधता में ही सन्निहित होती है।

प्रत्येक श्रेष्ठ कर्म यज्ञ कहलाता है। यज्ञ परिवृत्तिचक्र कहलाता है। उसे कहीं से प्रारंभ किया जाय, आत्मदक्षिण होने पर—तल्लीन होकर कर्मरत रहने पर, यज्ञ की सफलता निश्चित रहती है। यज्ञ मनुष्य में देवत्व का संचार, करता है, उसे अमर बना देता है। अमर बनने के लिए यज्ञतन्तु का वितान करो, स्वतंत्रता और सुन्दरता से साक्षात्कार करो, विविधता की छटा देखो, असीमता को खोजो। अदेवयाजी होकर, परतन्त्र होकर, असुन्दरता और एकरसता का आलिंगन करके तथा सीमाओं में बंधकर कोई भी मनुष्य दिव्य जीवन का अधिकारी नहीं बन सकता। स्वतन्त्र और असीम ही भूमा है; आनन्द का अधिष्ठान है। कर्म ही मनुष्य को भूमा बनाता है। कर्मचेतना ही मनुष्य

को शाश्वत आनन्द की असीमता से परिचय कराती है। कर्मचेतना ही आशा है जो कर्म-साधक को मृत्यु से बचाती है।

निरुक्तकार यास्क ने मृत्यु से बचाने वाले को मित्र कहा है—प्रमीतेः त्रायते इति मित्रम्। आशाएँ मेरी मित्र हों—इस कामना का वास्तविक अर्थ यही है कि किसी भी काम को करने के जो अनेक मार्ग हैं उनमें से हम जिस किसी को अपनायें वह मृत्यु से बचाने में समर्थ हो। उस मार्ग को हम इस दृष्टि से जीवन का अंग बनायें कि हमारा स्वतन्त्रता, सुन्दरता, असीमता, देवयजन आदि से परिचय हो। उसके माध्यम से हम ज्योतीरथ बनें, सत्यधर्मा बनें, अमर बनें। विविधता को स्वीकारे बिना ऐसा नहीं हो सकता; कर्म की अनन्त संभावनायें माने बिना ऐसा नहीं हो सकता; आशाओं को मित्र बनाये बिना ऐसा नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि जो आशा करूँ वह प्राप्त करूँ; अनन्त आशाओं-कर्मदिशाओं, में से जिसे मैं अपनाऊँ, वह मेरी मित्र हो।

सभी आशाओं को मित्र बनाना इसलिए आवश्यक है कि हम दूसरों द्वारा अपनाये जाने वाले कर्म मार्गों के प्रति भी सहनशील बनें। यह मानें कि वे भी दिव्यता के जनक हो सकते हैं—अमरता की सिद्धि में सहायक हो सकते हैं। कर्ममार्ग अपनाये जाते हैं--धारण किये जाते हैं--इसलिए धर्म कहलाते हैं। उनके प्रति मित्रता का भाव अपनाने से—सर्वधर्ममैत्री के अनुगामी बनने से जीवन की सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है, जीवन में दिव्यता का संचार होता है।

उदाराशय बनने पर ही मन में यह भावना जाग सकती है कि सब कर्म मार्ग मेरे अपने हैं, जिसे मैंने अपनाया है वह भी और जिन्हें अन्य अपनाये हुए हैं वे भी। ऐसे उदाराशय बनने पर ही 'सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु' मंत्र में निहित भावना हमारे जीवन की अंग बन सकती हैं।

कर्म विविधता में निहित, पर-सौन्दर्य विचित्र।
सब आशाएँ इसलिए बन जायें मम मित्र॥

अभिशप्ता

पात्र

करुणा —कोसल की रानी

सुजाता —एक श्रमिक स्त्री

अभिशप्ता

[मंच पर एक ग्रामीण पगडंडी का दृश्य। करुणा लगभग ३५ वर्ष की युवती है। सुजाता की आयु २० वर्ष के आसपास है। श्रमिक स्त्रियों का परिधान। दोनों बात चीत करती हैं कभी चलती हुई और कभी ठहर कर]

सुजाता-- (करुणा की ओर देखते हुए)—एऽ ऽ ! मैं नहीं जानती कि आपको क्या कहूं ?

करुणा— मेरा नाम करुणा है। मुझे करुणा कह कर पुकारो।

सुजाता—केवल करुणा ? नहीं मुझ से इस नाम से नहीं पुकारा जायगा। चालढाल से आप विवाहिता प्रतीत होती हैं। इसलिए आपको कुमारी भी नहीं कह सकता।

करुणा—विवाहिता ? हां ऽ ऽ, विवाहिता हूं।

सुजाता--एक वेणीधरा तो आप है; पर आपका दु:ख विरह नहीं प्रतीत होता। आर्या कहूं; परन्तु आपने निश्चय ही संन्यास नहीं लिया है। दीदी कहने का अधिकार आप दे भी दें तो भी मैं उसका उपयोग नहीं करूंगी।

करुणा—क्यों ? क्यों नहीं करोगी ?

सुजाता—मैं तो बहुत छोटी हूं। आपकी बहिन बनने का साहस नहीं होता। मां, हां, मां कहूं तो कैसा रहे ? आप इस गंवई गांव की छोकरी की मां बनना चाहेंगी ?

करुणा—तुम्हारा परिचय करने का ढंग अद्भुत है। तुम जो चाहो कह लो मुझे। मैं आपत्ति क्यों करने लगी ?

सुजाता—आप नहीं करेंगी आपत्ति। यह आकृति ही कहती है कि आप जन-जन की माता कहलाने योग्य हैं। आपको मां बनने में क्यों आपत्ति होगी ? मैं तो आप से डरती थी इसलिए पूछना पड़ा।

करुणा—तुम क्यों डरती थी मुझसे ? मैं भी खेत पर काम करती हूं। तुम भी करती हो। फिर क्यों डरती थी ?

सुजाता— भला डरूंगी क्यों नहीं ? जिस स्त्री को कभी सामने देखते हुए नहीं देखा, हंसते हुए नहीं देखा, किसी से बात करते हुए नहीं देखा, उससे डर नहीं लगेगा ? दुःख तो सब पर पड़ते हैं कभी न कभी; पर ऐसा भी क्या कि किसी को········(ठहर जाती है।)

करुणा—किसी को········किसी को क्या ?

सुजाता-- न किसी को अपना बनाना, न किसी का अपना बनने का यत्न करना। ऐसा भी नहीं लगता कि आपके कोई नहीं होगा परिवार में। कभी किसी की याद भी आती होगी; पर मैंने कभी आपको रोते हुए भी नहीं देखा। बताओ, डर नहीं लगता मुझे ?

करुणा—तो तुम मेरे रोने और हंसने को इतने ध्यान से देखती रही हो ? और वह भी डर के मारे !

सुजाता—देखती तो रही हूं। और, देखती भी क्या रही ? दीखता रहा मुझे। मैंने जान-बूझ कर थोड़े ही देखा यह सब। रही डर की बात ! तो मैं यह कह दूं कि डरती तो मैं यमराज से भी नहीं। दिन भर काम करती हूं और खेत की मेड़ पर पेड़ की छाया में सो जाती हूं। मै क्यों डरूंगी ?

करुणा—तुम्हीं ने तो कहा कि तुम मुझसे डरती रही हो।

सुजाता (हँस कर)—आप से ? आपसे डर दूसरी तरह का था। न जाने कैसा !

करुणा—डर क्या कई तरह का होता है ?

सुजाता—कई तरह का होता ही है। किसी के द्वारा कुछ छीने जाने का डर, किसी के द्वारा कुछ दे देने का डर, किसी के द्वारा तिरस्कार किये जाने का डर और न जाने कितनी तरह के डर।

करुणा—बड़ी पंडिता हो री ! तुम तो। मुझ से कैसा डर लग रहा था तुम्हें ?

सुजाता—वह कुछ और तरह का था। न जाने कैसा ? खेत के मालिक ने एक बार कहा था कि आप अकेली चार श्रमिकों के बराबर काम करती हैं। मैं डरती थी कि आप रोगी न हो जायें। अधिक श्रम करने से आपकी शारीरिक शक्ति क्षीण न हो जाय। आप से इस विषय में कभी कुछ कहूँ तो आप मानें या न भी मानें। इसी तरह की बातें........

करुणा—अनजाने में मेरा हित-चिन्तन करने वाली बहिन ! तू मुझे दीदी ही कहा कर। इतनी स्नेहमयी बहिन पाकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ......बहुत ही प्रसन्न !

[आगे बढ़ कर सुजाता को गले से लगा लेती है। सुजाता परम आनन्द का अनुभव करती है।]

करुणा—बहिन ! यद्यपि 'बहिन' बहुत प्रिय सम्बोधन है पर तुम बहुत सुन्दर हो—शरीर से भी और मन से भी। मैं नहीं जानती कि तुमको क्या कहूँ ? तुमने तो मेरे लिए सम्बोधन खोजने के लिए इतना सब कुछ सोच लिया कि इन सारी बातों को मुझसे पूछती तो मैं उत्तर भी नहीं दे पाती; पर मैं तो इतना कुछ सोच भी नहीं पा रही।

सुजाता (करुणा के बाहुपाश से छूटती हुई)—मेरा नाम सुजाता है। मुझे सुजाता कहिये आप।

करुणा—सुजाता ! ओह, कितना प्यारा नाम है ! सुजाता हो तो तन और मन से इतनी सुन्दर क्यों न होओगी ? इस नाम में मेरी अन्तर्तम

की सारी भावना समा गई है। तुम्हें यह नाम देने का श्रेय मुझे मिलना चाहिए था; पर तुम्हारे माता-पिता ने............

सुजाता—ठहरिये दीदी ! तेरे माता-पिता कोई नहीं हैं। कौन थे—यह भी मुझे जानकारी नहीं है।

करुणा—माता-पिता ने नहीं तो जिसने भी तुम्हें यह नाम दिया है वह सचमुच धन्य है।

सुजाता—मुझे यह नाम एक सज्जन पुरुष ने दिया है। वह पिता से अधिक वात्सल्य प्रकट करने वाला और भाई से अधिक स्नेही है। उसको भी क्या कह कर पुकारूँ, यह समस्या बनी हुई है। आप मिलना चाहेंगी उससे ?

करुणा—मुझे किसी पुरुष से मिलने की कोई उत्सुकता नहीं है। ऐसा करना मेरे लिए अनुचित भी होगा।

सुजाता—व्यक्ति और व्यक्ति में भेद होता है दीदी ! अनुचित है तो आप मत मिलिए; पर मैं समझती हूँ कि आप उस पुरुष से मिले विना न रह सकेंगी।

करुणा—ऐसी बात है तो उचित समय पर तुम्हारी बात अवश्य मानूँगी। पहले परिचय में कोई किसी का इतना आत्मीय नहीं बन जाता जितनी तुम बन गई हो। यह तो बताओ कि तुम आज मुझसे क्यों नहीं डरी ?

सुजाता—(मुस्काती हुई) आज, आज मैंने आपको हंसते हुए देखा। इसलिए सारा डर दूर भाग गया। सच कहो, आप हंसी थी न ?

करुणा—(कुछ मुस्करा कर) हाँ, आज मैं प्रसन्न हूँ। मेरी प्रसन्नता से तुम्हारा डर दूर भाग गया, इससे मैं और भी प्रसन्न हूँ।

सुजाता—आप क्यों हंसी थी दीदी ?

करुणा—मैंने अपने हाथों से एक घर बनाया है। आज वह पूरा हो जायेगा। अब तुम्हीं कहो, क्या प्रसन्न नहीं होऊँ ?

सुजाता—आपके घर नहीं था अब तक ? तो आप सोती कहाँ थीं ?

करुणा—सोती ही नहीं थी। रात-रात भर घर बनाने में लगी रहती थी। दिन में काम के मारे समय ही कहाँ मिलता है।

सुजाता (साश्चर्य) अरे! आप दिन भर कठोर परिश्रम करती थीं और रात में घर बनाने में लगो रहती थीं! इस तरह कितने दिनों से नहीं सोई आप? क्या आपको विश्राम की कभी आवश्यकता अनुभव नहीं हुई?

करुणा—कार्य सफल हुआ, यही तो सबसे बड़ा विश्राम है। अब विश्राम ही तो कर रही हूँ। उसी की एक झलक तुमने मेरे मुखमण्डल पर देखी थी। यों मैं बैठी बैठी ही थोड़ी देर कहीं ऊँघ लिया करती थी।

सुजाता—दीदी! क्या सृष्टि का सारा दुःख तुम अकेली ही उठा लेना चाहती हो?

करुणा—सुजाता! सारी सृष्टि का आनन्द मैं अकेली ही लूट लेना चाहती हूँ। श्रम करना क्या आनन्द लूटने का साधन नहीं है?

सुजाता—आप आनन्द लूटती हैं तो इतनी दुःखी क्यों रहती हैं? हँसती बोलती क्यों नहीं?

करुणा—हँसना-बोलना तो आनन्द का प्रदर्शन करना हुआ। क्या बिना प्रदर्शन के आनन्द नहीं लूटा जा सकता?

सुजाता—लूटा तो जा सकता है; पर एक सीमा तक ही। असीम आनन्द अकेले-अकेले नहीं लूटा जा सकता।

करुणा—क्यों नहीं लूटा जा सकता? मैं तो लूटती ही रही हूँ।

सुजाता—दीदी! आनन्द लूटना और आनन्द लूटने के भ्रम को पालना—दोनों बातें एक नहीं हैं।

करुणा—क्यों री! तो क्या मैं भ्रम ही पाल रही थी?

सुजाता—संभव है पाल रही हों। आप अपने मन से पूछिये न!

करुणा—यह कैसे ज्ञात होगा कि सही बात क्या है?

सुजाता—आप अपने किसी प्रियजन के साथ आनन्द लूटिये। यदि ऐसा प्रतीत हो कि आप का आनन्द पहले से कई गुना बढ़ गया है तो

आप स्वयं समझ जायेंगी कि आप बहुत ही सीमित आनन्द का उपभोग कर रही थीं।

करुणा—सुजाता ! तुम सही कहती हो। सांसारिकता का ज्ञान तुमको बहुत अधिक है। मैं अभी तुम्हारे साथ बात करते हुए यह अनुभव कर रही हूँ कि मेरा हृदय कई गुने आनन्द से भर गया है। मैं सचमुच पूरा आनन्द नहीं लूट रही थी अथवा कदाचित्…………।

सुजाता—हाँ, हाँ, कहिये।

करुणा—कदाचित् मेरा कहना भी सही हो। मुझे श्रम करते हुए यह अनुभव होता था कि इतने सारे श्रम कर रहे हैं। मैं इनसे अभिन्न हूँ। इतने सारे लोगों को अपना मान कर ही मैं आनन्द पाती थी।

सुजाता—आत्मीयता के ऐसे क्षणों में आप सचमुच ही वास्तविक आनन्द पाती होंगी; पर ऐसे क्षण बहुत कम आते होंगे क्योंकि यदि वे बार-बार आते होते तो उन क्षणों के विषय में आप किसी को अपना बना कर बताये बिना नहीं रहतीं। मनुष्य का ऐसा स्वभाव ही नहीं है।

करुणा—तुम्हारी बात मान लेती हूँ सुजाता ! न जाने कैसे मुझे लग रहा है कि तुम्हारी बात माने बिना नहीं रह सकूँगी क्योंकि तुम मेरे अन्तर में पैठ कर उसका कोना-कोना देख चुकी हो। मैं तुम्हें बहका नहीं सकती।

सुजाता—यदि ऐसा है तो क्या आप अपनी सुजाता को बता सकेंगी कि आप श्रम के रूप में ईश्वर का साक्षात् सान्निध्य पाकर भी इतनी दु:खी क्यों रहती हैं ?

करुणा—सारी बात नहीं कह सकूँगी सुजाता ! इतना ही जान लो कि मैं अभिशप्ता हूँ। उस अभिशाप का फल भोग रही हूँ। आनन्द के क्षणों में भी उस अभिशाप की स्मृति मुझे उदास बना देती है।

सुजाता—क्या उस अभिशाप से बचने का कोई उपाय नहीं हो सकता ?

करुणा—सुजाता ! क्या बताऊँ मेरे पति ने मुझ पर, मेरी क्षमता पर विश्वास नहीं किया। वह अविश्वास ही अभिशाप है। मैं अपनी क्षमता का

परिचय तो दे रही हूँ, पर अभिशाप से मुक्त होना केवल मेरे वश की तो बात नहीं है ।

सुजाता—जो आपके वश की बात है वह बड़े से बड़े अभिशाप से मुक्त करने के लिए पर्याप्त है । आप तप कर रही हैं । अपने तप की शक्ति पर आपको विश्वास नहीं है क्या ?

करुणा—मेरी मानसिक दशा इतनी अस्तव्यस्त है कि इस विषय में मैं कोई निश्चित उत्तर नहीं दे सकती ।

सुजाता—उत्तर तो आपने दे दिया पहले ही ।

करुणा--कब ? क्या उत्तर दे दिया ?

सुजाता--आपने अभी कहा था न, कि आपका घर बन कर तैयार हो गया है । आपके इस कथन से यह स्पष्ट हो गया कि आपका तप प्रभाव-हीन नहीं है । अब उसकी शक्ति पर विश्वास करना न करना आपका काम है ।

करुणा--सुजाता ! मेरे तप की शक्ति तो तुम हो और तुम पर मैं विश्वास करती हूँ । मेरी एक बात मानोगी ?

सुजाता--मेरी दीदी कहेगी और मैं नहीं मानूँगी ?

करुणा--बहिन ! मेरे बनाये हुए घर को मैं तुझे भेंट करना चाहती हूँ । उसे स्वीकार करके मेरे मन को शान्ति प्रदान कर ।

सुजाता—(साश्चर्य) आपका बनाया हुआ घर ! उसमें आप नहीं रहेंगी क्या ? फिर आप कहाँ रहेंगी ?

करुणा--मैं वहीं रहूँगी जहाँ अब तक रहती आई हूँ ।

सुजाता--(हँस कर) तो मेरे लिए भी रहने का स्थान है ही । वह बुरा भी नहीं है ।

करुणा--बहिन ! मैंने सचमुच यह घर ऐसे ही किसी व्यक्ति के लिए बनाया है जिसके पास सिर छुपाने के लिए कोई ठौर न हो ।

सुजाता--ऐसे तो और भी कई लोग हैं । मैं घर में रह कर क्या करूँगी ? वैसे मैं एक छप्पर बना कर उसमें रहने का अभ्यास कर चुकी हूँ ।

करुणा--तो कहाँ गया वह छप्पर ?

सुजाता--(पुरानी स्मृति से दुःखी होकर) छप्पर ? वह जला दिया गया अग्नि में।

करुणा---अयँ ! किसने जला दिया ? तुम तो इतने मधुर स्वभाव की हो कि किसी से तुम्हारी शत्रुता भी नहीं हो सकती। फिर किसने जलाया तुम्हारा छप्पर ?

सुजाता--मेरे स्वभाव ने ही जलाया और कौन जलाता ?

करुणा--क्या तुमने अपने आप अपने छप्पर में आग लगा ली ?

सुजाता--कुछ ऐसा ही समझ लीजिए। (मुँह लटका लेती है)

करुणा--ऐमा प्रतीत होता है कि तुम कुछ छुपा रही हो। मुझसे कहने में कोई आपत्ति न हो तो सारी बात मुझे सुनाओ सुजाता !

सुजाता--सुनाना क्या है ? वरुणा नदी के किनारे एक श्रमिकों की वस्ती थी। उसी में मेरा छप्पर था। एक दिन कोसल की रानी वरुणा में स्नान करने के लिए आई............

करुणा--(चौंक कर मुख नीचा करती हुई) कोसल की रानी !........(फिर कुछ स्वस्थ सी होकर)........हाँ, अच्छा, आगे क्या हुआ ?

सुजाता--आप यों अस्त-व्यस्त सी क्यों हो गई दीदी !

करुणा --कुछ नहीं, यों ही। सुनाओ तुम तो पूरी बात।

सुजाता--रानी अपनी सखियों के साथ बहुत देर तक जल-क्रीड़ा करती रही। ठण्ड के दिन थे उसका शरीर ठण्ड से काँप रहा था। उसने सेविकाओं से तत्काल आग जलाने के लिए कहा।

करुणा--(अन्यमनस्क मुद्रा में) अच्छा ! फिर क्या हुआ ?

सुजाता--सेविकाओं ने आग जलाने के लिए मुझसे थोड़ी फूंस मांगी। फूस फालतू तो थी नहीं। छप्पर में लगी हुई फूस देने के लिए मैं तैयार नहीं हुई। इसलिए सेविकाओं ने रानी को प्रसन्न करने के लिए मेरे छप्पर में आग लगा दी। रानी तो अपनी ठण्ड भगा कर प्रसन्न हो गई; पर हवा से आग इतनी बढ़ गई कि श्रमिकों के सारे छप्पर जल कर भस्म हो गये।

करुणा— (अन्यमनस्क मुद्रा में) हूँ !

सुजाता—दीदी ! आप उदास हो गईं। बड़े लोगों की सुख-सुविधा के लिए हम लोगों को ऐसा बलिदान तो जीवन भर देना पड़ता है। आप क्या सोच रही हैं ?

करुणा —(चौंक कर सजग होती हुई) हाँ....हाँ" मैं तो यह सोच रही थी बहिन ! कि कभी वह रानी तुम्हें मिल जाय तो तुम उससे कैसा व्यवहार करोगी ?

सुजाता (सोचती हुई)—दीदी ! मैं तो उससे वैसा ही व्यवहार करूँगी जैसा आप के साथ कर रही हूँ। उन लोगो ने बुरा काम किया तो क्या मैं शिष्टाचार को भी तिलांजलि दे दूँ ?

करुणा – मेरी प्यारी बहिन ! तुम सचमुच ही समझदार हो। कष्टों की आग में तप कर तुम कुन्दन की तरह चमक रही हो। मैं बताऊँ तुम्हें कि वह अपराधिनी रानी तुम्हारे सामने खड़ी हुई है।

सुजाता (आश्चर्य से आंखें फाड़ कर देखती हुई)—तुम ?आप ? नहीं, नहीं। ऐसा कैसे हो सकता है ? आप कोसल की रानी नहीं हो सकतीं।

करुणा —सुजाता ! मैं सत्य कह रही हूँ। मैं ही हूँ कोसल की रानी। कोसल-राज ने प्रजा की पुकार को सुन कर न्यायालय में मुझे दण्डित किया।

सुजाता (साश्चर्य) —क्या दण्ड दिया आपको ?

करुणा —यह कि मैं राज्य भर में भीख मांग मांग कर उन निर्धन श्रमिकों के लिए फिर से वैसी झोंपड़ियां बनाऊँ। जब तक सबके लिए झोंपड़ियां नहीं बन जायें तब तक में राजभवन में प्रवेश नहीं कर सकती।

सुजाता—(दुःखी होकर)–ओह !बहुत कठोर दण्ड दिया महाराज ने आपको।

करुणा —दण्ड तो ठीक ही दिया महाराज ने। उनकी न्यायप्रियता पर किसी को अविश्वास नहीं है; पर न्याय करते समय महाराज ने मुझे दण्ड के साथ अभिशाप भी दे दिया।

सुजाता—अच्छा ! तभी अभिशाप की बात कह रही थीं आप। दीदी ! मुझे स्पष्ट बताइये कि महाराज ने आपको क्या अभिशाप दे दिया ?

करुणा— सुजाता ! मैं महाराज की प्रजा ही नहीं पत्नी भी थी। उन्हें अपनी पत्नी के सामर्थ्य पर विश्वास होना चाहिए था। वे दण्ड के रूप में यह आदेश देते कि मैं परिश्रम करके श्रमिकों के लिए झोंपड़ियां बनवाऊँ। भीख मांगने की बात कह कर मुझे अभिशाप ही दिया उन्होंने।

सुजाता—हाँ, महाराज को ऐसा ही आदेश देना चाहिए था।....पर कुछ भी हो आपने उस अभिशाप से मुक्ति पा ली है।

करुणा —हाँ, सुजाता मैं भी ऐसा ही समझती हूँ। मैं आठ वर्षों से निरन्तर परिश्रम कर रही हूँ और उससे प्राप्त द्रव्य को श्रमिकों के लिए घर बनाने में व्यय करती रही हूँ।

सुजाता--आपने तो बताया कि आपने एक ही घर बनाया है।

करुणा— एक सौ श्रमिकों के लिए घर बन गये सुजाता ! एक दो दिन में सारा काम पूरा हो जायगा। यह एक घर मैंने अपने हाथों से बनाया है। दूसरे घरों को श्रमिक बना रहे हैं। द्रव्य की व्यवस्था मैं कर रही हूँ। निर्माण कार्य पूरा हो जाने पर ही श्रमिकों को पता चलेगा कि यह आवास-योजना उन्हीं लोगों के लिए चल रही है।

सुजाता—दीदी ! आपने बहुत बड़ा काम कर दिया। आपने एक सौ एक लोगों के रहने के लिए प्रबन्ध कर दिया। लोग कितने प्रसन्न होंगे।

करुणा—- इतने लोगों के साथ मैं भी प्रसन्न हो सकूं इसके लिए मेरी भेंट स्वीकार करो सुजाता ? मैं तुम्हारे प्रति अपराधी तो हूँ ही। अपराध के मार्जन का अवसर दो मुझे।

सुजाता— नहीं दीदी ! नहीं। मैं इस योग्य नहीं हूँ। इसके स्थान पर आप मुझे अपने लिए घर बनाने की प्रेरणा दीजिए। मैं आपकी आज्ञा का सहर्ष पालन करूँगी।

करुणा—तो तुम्हीं बताओ इस घर में कौन रहे ? बाद में अन्य घरों के विषय में सोचेंगे ।

सुजाता—मैंने आपसे एक सज्जन पुरुष के विषय में कहा था । वे आपके गृह-निर्माण-कार्य में ही योग देते हैं । रात में कभी-कभी मैं भी वहां काम करने जाती हूँ । उनको वहां बड़े उत्साह से काम करते हुए देखा है ।

करुणा—क्या वे उस घर में रहना स्वीकार करेंगे ?

सुजाता—वे मुझ पर बड़ा स्नेह रखते हैं । मैं कहूँगी तो अवश्य मान जायेंगे ।

करुणा—तो तुम उन्हें मनाओ बहिन ! अब मैं तुमसे पृथक् नहीं रह सकूँगी । हम दोनों मिल कर अपने लिए दूसरा घर बना लेंगी ।

सुजाता (दूर संकेत करती हुई)—दीदी ! वे सज्जन पुरुष इधर ही आ रहे है । देखिये, वे आ रहे । (संकेत से दिखाती है ।)

करुणा—(ध्यान से देखती हुई)—अरे ! ये हैं तुम्हारे सज्जन पुरुष ? ओह ! ये तो आर्यपुत्र है ।

सुजाता (साश्चर्य)—क्या कहा ? ये कोसल-नरेश हैं ? हे प्रभो ! कितनी कृपा है तुम्हारी ? मैं कोसल के महाराज और महारानी की स्नेह-भाजन बन सकी । इससे बड़ा क्या सुख हो सकता है जीवन में ? दीदी ! सचमुच महाराज ही है न ?

करुणा—श्रमिक के वेश में होने पर भी क्या मैं उन्हें पहचानने में भूल करूँगी ? (आकाश की ओर देखते हुए) भगवन् ! ये श्रमिक के रूप में मेरा काम कर रहे थे ! पहचाने न जायें, इसलिए ये रात्रि को आते थे ?

सुजाता—महाराज ही होंगे । इतनी स्नेहशीलता साधारण लोगों में नहीं मिलती ।

करुणा—महाराज यहाँ तक आने का कष्ट करें उसके पहले हम लोग ही उन तक पहुंचें सुजाता ? मैं अपने अपराधों के लिए क्षमा मांग लूँगी उनसे । आठ वर्ष बाद मैं उनके दर्शन कर पाऊँगी । कितने आनन्द का क्षण है यह मेरे जीवन का ?

सुजाता—दीदी ! मैंने कही वह बात आप अब तो मानोगी कि आप आन का एक अंश ही भोग रही थीं। अब देखिये, असीम आनन्द क्षण आपके सामने है।

करुणा (सानन्द)–हाँ, तुमनें सच कहा था सुजाता ! असीम आनन्द क्षण आ रहा है। चलो, चलो। शीघ्रता करो।

सुजाता--चलो दीदी ! आपकी बहिन होने के नाते महाराज का अपरि स्नेह मुझे भी मिलेगा। मैं उससे वंचित क्यों रहूँ !

करुणा --महाराज दण्ड देने में कितने कठोर हो गये थे ? राजा के लि ऐसा उचित ही था।

सुजाता—पर आपके काम को पूरा करवाने के लिए वे श्रमिक बनने में नहीं हिचके। कोसल नरेश का कितना स्नेह है आप पर ?

करुणा --श्रम ही वह शक्ति है जो स्नेह के सभी बन्धनों को घनिष्ठ कर है। राजभवन की दीवारों में असीमित आनन्द का ऐसा क्षण दुर्ल था। यहाँ श्रम ने उसे सुलभ कर दिया है।

[दोनों एक ओर चली जाती हैं।]

[पटाक्षेप]

समझौता

पात्र

विडूडभ—श्रावस्ती का निर्वासित राजकुमार

सुनाम — आश्रमवासी छात्र

मनोरथ—आश्रम के द्वार पंडित

महानाम—आश्रम के आचार्य

कुछ अन्य नागरिक

७

समझौता

समय -प्रातःकाल

स्थान -कपिलवस्तु के बाहर आचार्य महानाम का आश्रम।

[श्रावस्ती का निर्वासित राजकुमार विडूडभ आश्रम को ढूँढ़ता हुआ आता है। वह सैनिक के वेश में है।]

विडूडभ -यह सामने वही कपिलवस्तु है जहाँ बचपन में मैं खेला-कूदा हूँ। यहीं कहीं आचार्य महानाम का आश्रम था। देखूँ, आचार्य को प्रणाम करके नगर में प्रवेश करूँगा।

सुनाम—(सामने से आता हुआ)—यह आश्रम है भद्रपुरुष ! प्रत्येक आर्य आश्रम की मर्यादा को समझता है। आप क्या कोई विदेशी सैनिक हैं ?

विडूडभ—आश्रम की मर्यादा ? हुंअ ! (क्रोध में कुछ कहना चाहता है, पर कहता-कहता चुप हो जाता है।)

सुनाम—अवश्य ही आप आश्रम की मर्यादा को नहीं जानते। देखिए, सैनिक की वेषभूषा में आश्रम में प्रवेश करना अनुचित है।

विडूडभ—मैं यहाँ आश्रम की मर्यादा सीखने नहीं आया। आचार्य महानाम से मिलने आया था।

सुनाम—आप अवश्य ही उनके दर्शन कर सकते हैं। आश्रम में आपका स्वाग[त]
है। आप अपने वस्त्र उतार दें.........

विडूडभ—(आवेश में आकर)–और कौपीन धारण कर लूँ। यही कहते हो

सुनाम—कौपीन तो हमारे लिए होती है। आप आर्य मनोरथ से अपने लि[ए]
कौशेय वस्त्र प्राप्त कर सकते हैं। वे इस आश्रम के द्वारपण्डित हैं।

विडूडभ—मैं नहीं जानता—मनोरथ कौन है ? मुझे तो आचार्य महानाम [से]
मिलना है। मैं इसी वेष में उनसे मिलूँगा। (सुनाम की ओर आं[खें]
निकाल कर देखता हुआ) जाओ उन्हें सूचना दे दो।

सुनाम—आप प्रवेश किसी भी वेषभूषा में करें, पर आर्य-मर्यादा की दृष्टि से"

विडूडभ-(क्रोध से चीखता हुआ-सा)–मैं नहीं जानता मर्यादा-वर्यादा। तु[म]
जाकर इसी समय सूचना दे दो उन्हें।

सुनाम—मैं सूचना दे दूँगा पर.........

विडूडभ—देखो छोकरे ! तुम वही काम करो जिसके विषय में मैं कह रहा हूँ।
अन्यथा (तलवार निकालने की चेष्टा करता है।).............

सुनाम (घबराकर) मैं सूचना देने जा रहा हूँ भाई ? तलवार को अप[ने]
कोश में ही विश्राम करने दो। (भागता हुआ सा चला जाता है।)

विडूडभ—(हँसता हुआ) अह ह ह ! शक्ति ही प्रधान है इस संसार में। शक्ति
के द्वारा तन, मन और धन सब पर अधिकार किया जा सकता है।

[मनोरथ का प्रवेश]

मनोरथ—अतिथि देवता ! आर्य महानाम के आश्रम में आपका स्वागत है।

विडूडभ--(चुप बना रहता है। उत्तर नहीं देता।)

मनोरथ--जान पड़ता है--बहुत दूर से आये हो। तभी रसवर्षिणी आँखों में
हिंसा के डोरे तने हुए हैं। किसी अनुचित--बहुत ही अनुचित कार्य
करने को तत्पर व्यक्ति–जैसा संभ्रम अंकित है इस मुखमण्डल पर।

कान कुछ सुनते ज्ञात नहीं होते, जिह्वा कुछ कहती नहीं जान पड़ती और........अच्छा जाने दो। थकावट मनुष्य की ऐसी ही दशा कर देती है, फिर वह मन की हो या शरीर की।

विडूडभ—(थोड़ा उत्तेजित सा होकर)—क्या आपका मुंह नहीं थकता कभी ?

मनोरथ —थकता है, थकता है। क्यों नहीं थकेगा ? शरीर और मन थक जाता है तो मुंह क्यों नहीं थकेगा ? (ठहरकर, जैसे कोई रहस्य कह रहे हों।) तब थकता है जब यह जान पड़े कि उससे निकलने वाले शब्दों का सुनने वाले अनाड़ी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा। ठीक है न महाशय ?

विडूडभ-हुए।

मनोरथ-मैं इस आश्रम का द्वार पंडित हूँ। ऐसा हो ही नहीं सकता कि मैं कभी अनुचित वात कह दूँ। अब यही लीजिए-यह आपकी तलवार है न! यह कोश से थोड़ी निकली हुई है। इससे आप वहुत ही असावधान व्यक्ति जान पड़ते हैं।

विडूडभ-क्या आपको तलवार से भय लग रहा है।

मनोरथ-भय ? नहीं; भय क्यों लगने लगा। मैं तो यह कह रहा था कि ऐसा असावधान व्यक्ति किसी की, कभी भी हत्या कर सकता है।

[नेपथ्य में कुछ व्यक्तियों के भागने का स्वर।]

एक व्यक्ति-(भागता हुआ आकर)हत्यारा आया। भागो। हत्यारा आया।

(भाग जाता है।]

नेपथ्य से स्वर-बचाओ, हत्यारा आया।

मनोरथ-(घबरा कर) आर्य ! आप शीघ्र आश्रम में आ जाइये। न जाने कौन हत्यारा लोगों को आतंकित कर रहा है।

विडूडभ-आप चिन्ता न करें। यहां कोई हत्यारा नहीं आ सकता।

मनोरथ-हाँ, यहां क्यों आने लगा। यह तो आश्रम है और यहाँ आप जैसे

क्षत्रिय भी हैं न ! आप दूर देश के हुए तो क्या हुआ । हैं तो क्षत्रिय ही ।

विडूडभ—क्षत्रिय ! कौन है क्षत्रिय ?

सुनाम —(प्रवेश कर)—महोदय ! आपने पहले तो कहा ही नहीं कि आप क्षत्रिय नहीं हैं । मैंने तो आचार्यजी से कह दिया कि एक क्षत्रिय सैनिक आश्रम में प्रवेश करना चाहता है ।

बिडूडभ—(उत्तेजित होकर) हाँ, हां मैं नहीं हूँ क्षत्रिय ।

सुनाम—तो मैं झूँठ बोला ।

विडूडभ—मैं यह नहीं जानता, पर मैं क्षत्रिय नहीं हूँ । (ऊँचे स्वर से) नहीं हूँ क्षत्रिय मैं ।

महानाम—(प्रवेश करके) अरे भाई कौन है यह ? (विडूडभ को देखकर) अरे बेटे विडूडभ ! क्या यह तुम कहते हो कि क्षत्रिय नहीं हो ?

विडूडभ—प्रणाम आचार्यवर !

महानाम—सुखी रहो वत्स ! तुम तो क्षत्रियों के सिरमौर हो । कौन कहेगा कि तुम क्षत्रिय नहीं हो ।

विडूडभ—आचार्य ! मैं ही कह रहा हूँ कि मैं क्षत्रिय नहीं हूँ । आपने मुझे धोखे में रक्खा ।

महानाम—तो क्या तुम श्रावस्ती के महाराज प्रसेनजित के पुत्र नहीं हो ।

विडूडभ—हूँ, पर मैं दासीपुत्र हूं ।

महानाम-दासीपुत्र ? यह कैसे ? तुम्हारी माता तो शाक्यकुल की राजकुमारी है ।

विडूडभ—नहीं है राजकुमारी । शाक्यों ने श्रावस्ती के नरेश से राजकुमारी कहकर किसी दासी का विवाह कर दिया । उसी का पुत्र हूँ मैं ।

महानाम यदि यह सत्य हो तब भी तुम्हारे क्षत्रिय होने में तो कोई सन्देह नहीं है । आर्यजाति में वंश पिता से निर्धारित होता है वत्स ! तुम तो जन्म से ही नहीं, गुणों से भी क्षत्रिय हो ।

विड्डभ-यदि मुझे आप पूरी तरह क्षत्रिय मानते हैं तो मेरी माता भी क्षत्राणी क्यों नहीं हुई ? क्या कभी विषवल्लरी से अमृत-फल लग सकता है ?

महानाम-तुम्हारी माता क्षत्राणी ही है वत्स ! दुर्भाग्य से उसे दास्यवृत्ति अपनानी पड़ी हो यह सम्भव है ।

विडूडभ—तो ये लोग मानते क्यों नहीं ? मुझे दासीपुत्र क्यों कहते हैं ?

महानाम— छोटी सी बात पर उत्तेजित मत होओ बेटे ! लोग तो भेड़चाल चलते हैं । तुम युवराज के रूप में शीघ्र ही अपने गुणों से सारी प्रजा को अपने वश में कर लोगे । मुझे इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं है कि तुम योग्य पिता के योग्य उत्तराधिकारी बनोगे ।

विडूडभ—नहीं, मैं प्रतीक्षा नहीं करूँगा । मैं इन शाक्यों का वंश तक उखाड़ फेंकूँगा । मेरे सैनिक अपना काम कर रहे हैं ।

महानाम—तो क्या कपिलवस्तु में यह हत्याकांड तुमने मचा रक्खा है ? बहुत बुरी बात है । सैनिक स्त्रियों और बच्चों तक को मार रहे हैं । रोक दो विडूडभ ,यह हत्याकांड, रोक दो ।

विडूडभ—नहीं आचार्य । ऐसा नहीं होगा । मेरे हृदय में जलती हुई प्रतिहिंसा की आग तब तक शांत नहीं होगी जब तक शाक्यों का मूलोच्छेद न कर दूँ ।

मनोरथ—(महानाम की ओर उन्मुख होकर)—आचार्य ! मैं नगर में होकर आया हूँ । स्थान स्थान पर हत्याकांड मचा हुआ है । भागते हुए लोगों को सैनिक घेर घेर कर पकड़ लेते हैं और मार डालते हैं । राजमार्ग में भी लोगों के कटे हुए अवयवों का ढेर लग गया है ।

महानाम—(दयार्द्र होकर) बेटे ! यह पाप मत करो । निरपराध लोगों की हत्या करके तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ।

विडूडभ—आचार्य ! मेरा करणीय मै जानता हूँ । मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे सैनिक आपके आश्रम की ओर देखेंगे भी नहीं । यही

नहीं यदि कोई भाग कर आश्रम में आ जायगा तो उसको भी मेरे सैनिक नहीं मारेंगे।

महानाम—वत्स ! तुमने कहा वह तो उचित ही है परन्तु मैं इस आश्रम में ही तो समाया हुआ नहीं हूँ। मेरा सब कुछ इस आश्रम में ही तो नहीं है।

विडूडभ—यदि आश्रम के अतिरिक्त कहीं किसी और स्थान पर भी आपका कुछ है तो उसकी रक्षा की जायेगी। आप आदेश दीजिए।

महानाम—पुत्र! यह आश्रम तो वह प्रयोगशाला है जिसमें मैं अपनी ममता का क्षेत्र बढ़ाता रहता हूँ। अब यह सारी शाक्यभूमि मेरा आश्रम है और सारे शाक्य मेरे आश्रमवासी हैं, मेरे ही स्वरूप हैं।

विडूडभ—आचार्यवर ! आप तो दर्शनशास्त्र की भाषा बोलने लगे हैं। इस दृष्टि से तो सारा संसार ही आपका आश्रम हो जायगा।

महानाम—साधना चल रही है। मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब संसार मेरा परिवार बन जाय। अभी इतनी साधना नहीं कर पाया हूँ।

विडूडभ—गुरुदेव ! अभी मैं भी इतनी साधना नहीं कर पाया हूँ कि अपने शत्रुओं को क्षमा कर दूँ। मैं शाक्यों को अवश्य नष्ट करूँगा।

महानाम—(गम्भीर होकर सोचते हुए)--यदि ऐसी बात है तो........

विडूडभ—आप आदेश दीजिए। मैं अपनी घोषित नीति के साथ विरोध न होने पर उसका पालन करूँगा।

महानाम--यदि मनुष्यों के प्राण लेने से ही तुम्हारे क्रोध को शान्ति मिलती है तो तुम शाक्य नरेश का वध करो और स्त्री बच्चों को छोड़ दो।

विडूडभ—गुरुदेव ! शाक्यनरेश तो पहले ही भाग गये। कहाँ गये यह भी पता नहीं है।

महानाम—इसका अर्थ तो यह हुआ कि भाग जाने वाले को तुम क्षमा कर देते हो।

विडूडभ—और उपाय ही क्या है ?

महानाम – धिक्कार है ऐसे राजा को, जो प्रजा को विपत्ति में छोड़कर पलायन कर जाय और तुम्हारी नीति को धिक्कार है जो पलायन करने वाले का तो कुछ नहीं कर सकती और निरीह लोगों के प्राण लेने की प्रेरणा देती है।

विडूडभ—गुरुदेव ! इसमें धिक्कार की कोई बात नहीं। प्राण बचाने का उपाय पलायन करने के अतिरिक्त और हो भी क्या सकता है ?

महानाम—यदि तुम पलायन को ही एक मात्र उपाय मानते हो तो तुमने इन लोगों को भी पलायन करने का अवसर क्यों नहीं दिया ?

विडूडभ—आचार्य ! इनको भागने का अवसर दे दूँ तो शाक्यों को समूल नष्ट करने का मेरा संकल्प अधूरा नहीं रह जायगा ?

महानाम—(सोचकर) संकल्प तो तुम्हारे कई अधूरे हैं। मुझे अभी गुरु-दक्षिणा तक नहीं दी।

विडडभ—गुरुदेव ! शाक्यों को जीतकर इस बात पर विचार करूँगा।

महानाम—यदि मैं गुरु-दक्षिणा अभी मांगू तो ?

विडूडभ—आप मांगिये।

महानाम—सामने आश्रम की पुष्करिणी है। मैं इसमें डुबकी लगा रहा हूँ। जब तक जल में से बाहर न आऊँ तब तक यह हत्याकांड बन्द कर दो और जितने लोग भाग सकें उन्हें भाग जाने दो।

विडूडभ—यदि इतनी सी बात से आप सन्तुष्ट हो जाते हैं तो मैं इसके लिए तत्पर हूँ।

महानाम—ठीक है मैं डुबकी लगा रहा हूँ। (सुनाम से) सुनाम ! आर्य मनोरथ अब इस आश्रम के रक्षक होंगे। सब लोगों से चिल्ला कर कह दो कि वे जिधर भाग सकें भागें।

विडूडभ – हाँ कह दो कि आचार्य डुबकी लगा रहे हैं। वे जल से बाहर निकलें तब तक लोग भाग जाएँ। मैं अपने सैनिकों को आदेश दे रहा हूँ कि वे इतनी देर तक हत्याकाण्ड रोक दें।

[जाता है।]

महानाम—आर्य मनोरथ ! आश्रम की परम्पराओं की रक्षा करने का उत्तर-दायित्व आज से आपका है। मैं जल में डुबकी लगा रहा हूं।
[चले-चले जाते हैं। भागते हुए एक नागरिक आता है।]

नागरिक— बचाओ। बचाओ।

सुनाम- डरो मत भैया ! तुम दूर भाग जाओ। औरों को भी ले जाओ। आचार्य महानाम ने जल में डुबकी लगाई है। वे जल से बाहर निकलें तब तक सब भाग जाओ। (ठहर कर)
मैं सबको भागने के लिए कहता हूं।
[एक ओर सुनाम और दूसरी ओर नागरिक चला जाता है।]

मनोरथ—इस उद्धत युवक को साधना कितना कठिन काम है ? आचार्य ने थोड़ी देर के लिए ही सही हत्याकाण्ड रुकवा दिया। (नेपथ्य में आहट सुनने का अभिनय करते हुए) लोग भागने लगे हैं, पर थोड़ी दूर भाग जाने से क्या वे बच जायेंगे ?

[दो नागरिकों का प्रवेश]

एक नागरिक—चलो भाई ! आचार्य महानाम के दर्शन कर लें। वे हमारे प्राण बचाने के लिए जल में डूबे हुए हैं।

दूसरा नागरिक—हां, अन्तिम बार अपने आचार्य के दर्शन कर लें। भागना व्यर्थ है। भागकर जायेंगे कहां ? ये राक्षस तो सब स्थानों पर खोज लेंगे हमें।

पहला नागरिक—इससे तो अच्छा है कि हम आचार्य के दर्शन करके मर जाएं

दूसरा नागरिक—ऐसे पुण्यात्मा के दर्शन मात्र से हमारा जीवन धन्य हो जायेगा

मनोरथ —भद्र पुरुषो ! भाग जाओ। इस तरह ठहरने से तो मारे जाओगे आचार्य का उद्देश्य ही अधूरा रह जायगा।

पहला नागरिक—हम नहीं जायेंगे। हम मरने से नहीं डरते। स्त्रियां और बच्चे दूर तक भाग नहीं सकेंगे। उनका मारा जाना निश्चित है तो हम ही क्यों भागें ?

दूसरा नागरिक—हम नहीं भागेंगे।

मनोरथ—आचार्य को डूबे हुए बहुत समय हो गया। वे बाहर निकलने ही वाले होंगे।

पहला नागरिक—हम उनके दर्शन करेंगे।

मनोरथ—उनके जल से बाहर निकलते ही हत्याकांड पुनः आरंभ हो जायगा।

दूसरा नागरिक—हम मर जायेंगे।

विडूडभ—(प्रवेश करके) क्या आचार्य अब तक जल से बाहर नहीं निकले ? न जाने कब बाहर आयेंगे वे ? मेरे सैनिक कब तक प्रतीक्षा करते रहेंगे ? वे तो रुक ही नहीं रहे थे। मैंने बड़ी कठिनाई से उन्हें रोका है।

मनोरथ—सचमुच बहुत देर हो गई। इतनी देर कोई भी मनुष्य सांस रोक कर पानी में बैठा नहीं रह सकता।

पहला नागरिक—कहां, नहीं रह सकता। जल में आचार्य को किसी ग्राह ने तो नहीं पकड़ लिया ?

मनोरथ—पुष्करिणी में ग्राह कहां से आया ?

दूसरा नागरिक—वे हम लोगों पर दया करके समाधि में लीन हो गये होंगे।

विडूडभ—मैं इतना विलम्ब सहन नहीं कर सकता। (ऊँचे स्वर से) सैनिको ! पुष्करिणी में डुबकी लगाकर आचार्य को खोजो।

नेपथ्य से सैनिक का स्वर—हम अभी खोज लेते हैं।

मनोरथ—अवश्य ही कोई बात है। इतनी देर पानी में डूबे रहना·······

विडूडभ—असम्भव है। अभी पता लग जायगा कि क्या हुआ।

नेपथ्य से सैनिक का स्वर—युवराज ! यह आचार्य का निर्जीव शरीर है। आचार्य ने डुबकी लगाकर स्वयं को एक चौखट के पत्थर से बांध लिया था। वे ऊपर कैसे आते ?

सब (आश्चर्य से)—हैं, यह क्या हुआ ?

मनोरथ— आचार्य आपने यह क्या किया ? शाक्यों की जीवन रक्षा के लिए आपने अपना जीवन त्याग दिया !

पहला नागरिक—(विड्डभ से) निष्ठुर नवयुवक ! अपने सैनिकों से कहते क्यों नहीं कि वे हम सबको घेर कर मार डालें ।

विड्डभ— भाइयो ! मुझे निष्ठुर, निर्मम, क्रूर सभी कुछ कह सकते हो, पर आचार्य महानाम पानी से न निकलें तब तक तुम लोगों का वध कैसे करूं ? पानी में से शव निकला है आचार्य कहां निकले। (सिर थाम लेता है ।) शाक्य नागरिको ! निर्भीक होकर चले जाओ । तुमको कोई नहीं मारेगा । मैं इस आश्रम में ही रह कर आचार्य की प्रतीक्षा करूंगा । आर्य मनोरथ ! मुझे अपने चरणों में स्थान दीजिए । (मनोरथ के पैर पकड़ता है ।)

मनोरथ —उठो युवराज । तुमने पशुतुल्य जीवन अपना लिया था ।

विड्डभ —मुझे मनुष्य बनाइये आर्य !

मनोरथ —वह तुम्हारा पश्चात्ताप बना देगा । इस हत्याकांड मे जितने लोग बच गये हैं उनकी सेवा करो । इस आश्रम में तुम्हारे इस रूप का स्वागत है ।

[पटाक्षेप]

रूप की महिमा

※※ पात्र

रावरण

मन्दोदरी

कुंभकरण

रूप की महिमा

स्थान—लंकापुरी में लंकेश्वर महादेव का मन्दिर

समय—प्रात:काल सूर्योदय से पूर्व

[लंकाधिपति रावण शिव की मूर्ति के सम्मुख, हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा है। वह बीच-बीच में आँखें खोलकर इधर उधर देख लेता है और पुनः ध्यानमग्न हो जाता है। वह बहुत ही व्यग्र दिखाई पड़ रहा है।]

रावण —जयशंकर ! (आंखें बन्द करके ध्यान करता हुआ।)

कदा निलिम्पनिर्झरीनिकुंजकोटरे वसन्
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरस्थमंजलिं वहन्
विलोललोललोचनो ललामभाललग्नकः
शिवेति मंत्रमुच्चरन् कदा सुखीभवाम्यहम् ॥

[आँखें खोलकर सामने देखने लगता है। एक ओर से मन्दोदरी का प्रवेश]

मन्दोदरी (दुःखी होकर)—स्वामिन् ! युद्ध की ज्वाला में आपने अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया। वह मेरा बेटा कहाँ है जिसे देखकर देवराज शची भी मुझसे ईर्ष्या किया करती थी ? (आँसू बहाती हुई भरे गले से) कहाँ है मेरा बेटा ?

रावण —(काँपती हुई आवाज में)—प्रिये ! तुम पुत्र-मोह में ही ऐसा कह रही हो अन्यथा तुम जानती ही हो कि युद्ध में मरना-मारना साधारण बात है। हमारे लिए वह गर्व का क्षण था जब मेघनाद ने इन्द्र को जीत लिया था उसी तरह आज भी गर्व का ही क्षण है क्योंकि उसने वीर की मृत्यु को वरा है।

मन्दोदरी —इस ज्वाला में कितने ही सेनापति बंधु-बांधव और हितैषी जल गये। अब न जाने और क्या होना शेष रह गया ?

रावण —मन्दोदरी ! तू विश्वविख्यात वीर रावण की धर्मपत्नी है। तुझे इस तरह विलाप करना शोभा नहीं देता। मेरा प्रतिशोध पूरा हुए बिना युद्ध समाप्त कैसे होगा ? क्या तू चाहती है मैं अपमानित होकर भी जीवित रह जाऊँ ?

[मन्दोदरी आंसू बहाती हुई चुपचाप बैठी रहती है।]

रावण —(उच्च स्वर से)–बोल, क्या अपने अपमान का प्रतिशोध न लूं ? देवरानी को ईर्ष्या इससे नहीं होती कि तू मेघनाद की माँ है वरन् इससे होती है कि रावण की पत्नी और उसके पुत्र की माता है। क्या तू चाहती है कि मैं ठोकरें खाकर जीवित रहूँ ?

मन्दोदरी —स्वामिन् ! मैं स्वप्न में भी ऐसी कल्पना नहीं कर सकती। स्वामी का मस्तक सदैव ऊँचा ही रहना चाहिए।

रावण —तो फिर ?

मन्दोदरी —स्वामिन् ! यह युद्ध मान-अपमान का है ही नहीं।

रावण —(कोप सहित)—तू ऐसा कहती है तब मेरे शरीर में आग सा लग जाती है। मेरी बहिन के नाक कान काट लेना क्या मेरा अपमान नहीं है ?

मन्दोदरी —नाक-कान काट लेना तो उस अपराध का दण्ड है जो आपकी बहिन ने किया था।

रावण —उसका अपराध हो गया यह कि उसने उन भिखारियों को अपने मन की बात बता दी।

मन्दोदरी —आप इस बात को इतनी सरलता से कह जाते हैं ? उसने अपने पति से द्रोह किया, एक गृहस्थी में आग लगाने का यत्न किया, एक आर्य नारी का अपमान किया, और अन्त में उन राजकुमारों को मारने के लिए तत्पर हो गई। तपस्वियों ने तो जो कुछ किया आत्मरक्षा के लिए किया।

रावण —(क्रोधपूर्वक) हुंअ ! क्या यह मेरी बहन का अपराध है कि उसने उन लोगों से प्रेम किया ?

मन्दोदरी —प्रेम····कैसा प्रेम ? यह प्रेम था या रूपासक्ति थी ? प्रेम किससे था—राम से, लक्ष्मण से या अपने पति से ? (थोड़ी ठहर कर) प्रेम तो जीवन में प्रकाश भर देता है। वह प्रेम नहीं मन का अन्धकार था जिसमें आपकी बहिन भी डूबती तथा औरों को भी डुबाती।

रावण —(झुंझला कर) तू मेरे सामने उन भिखारियों का पक्ष ले रही है; तुझे लज्जा नहीं आती ?

मन्दोदरी —वे हमारे यहाँ भीख मांगने तो नहीं आये। इसके विपरीत आपकी बहिन··········

रावण —(चीख कर)—बस-बस, चुप रह। क्या मैं यह मान लूँ कि तू भी शत्रु से मिल गई है ?

मन्दोदरी —मैं ऐसा कैसे कर सकती हूं; पर मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ और मुझे कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विषय में उचित बात कहने का अधिकार

है। आपको अपने शत्रु के लिए भी अनुचित बात नहीं करनी चाहिए।

रावण—अच्छा, मैंने तुम्हारी बात सुन ली। अब मेरे जँचेगी वैसा करूँगा।

मंदोदरी—जैसा आपके मन में आये वैसा ही करो; पर मेरी एक प्रार्थना मान लीजिए।

रावण—कौन सी प्रार्थना ?

मंदोदरी—मेरी इच्छा है कि जैसे मैं पुत्रवियोग से पीड़ित हूँ वैसे लंका की कोई माता पीड़ित न हो।

रावण—क्या ? क्या तात्पर्य है तुम्हारा ?

मंदोदरी -यह युद्ध रोक दीजिए। तभी मेरी इच्छा पूरी हो सकती है। अन्यथा न जाने कितने लोग मरेंगे और उनकी माताएँ पुत्र-शोक से पीड़ित होंगी।

रावण—युद्ध तो अब मेरे मरने पर ही रुकेगा। मैं इतना ही कर सकता हूँ कि सब शत्रुओं को तत्काल समाप्त कर दूँ। इससे तुम्हारी इच्छा भी पूरी हो जायेगी।

मंदोदरी—उनको कैसे समाप्त कर देंगे आप ?

रावण—कुंभकरण करेगा यह काम। मैंने उसको जगाने का प्रबन्ध कर दिया है। आने ही वाला होगा।

मंदोदरी—जिन शत्रुओं को मेघनाद नहीं मार सका उनको........

रावण—उनको कुंभकरण अवश्य मार देगा।

मन्दोदरी—(लम्बी साँस लेकर)—ऐसा भी कर देखिये: परन्तु........

रावण—तू प्रत्येक बात में परन्तु' लगा देती है।

[नेपथ्य में बादल गरजने जैसा स्वर]

रावण (प्रसन्न होकर)—ले जाग गया मेरा भाई ! अब शत्रुओं के प्राण निकले ही समझले।

[वैसा स्वर पुनः सुनाई पड़ता है। उनींदी आँखों वाले कुंभकरण का प्रवेश]

कुंभकरण—भैया और भाभी के चरणों में प्रणाम करता हूँ।

रावण—शत्रुओं का काल बन कर यश लूट मेरे भाई!

मंदोदरी—आपके मन में सत्य की ज्योति जले देवर जी!

कुंभकरण—भैया! आपने आज तक मुझे अधूरी नींद में कभी नहीं जगाया। आज कैसा संकट आ गया कि मुझे जगाने की आवश्यकता अनुभव हुई आपको?

मंदोदरी—देवर जी! लंका पर भारी संकट आ गया है। मेघनाद तक इस संकट के समय हमें छोड़ कर चला गया।

कुंभकरण (साश्चर्य)—अरे! मेघनाद से बलवान् कौन पैदा हो गया संसार में?

रावण—अयोध्या के दो राजकुमार हैं। उन्होंने हमारी बहिन शूर्पनखा के नाक-कान काट डाले। उसका प्रतिशोध लेने के लिए मैंने उनमें से बड़े राजकुमार की पत्नी का अपहरण कर लिया है। अब वे उसी को छुड़ाने के लिए वानरों की सेना लेकर यहां आये हैं। युद्ध चल रहा है।

कुंभकरण (विचार करता हुआ)—हुंअ..................

रावण (कुंभकरण की ओर देखकर)—चलो छोड़ो इन बातों को। (मंदोदरी से) भैया भूख से पीड़ित है। उसके आहार का प्रबन्ध करो।

[मन्दोदरी चली जाती है।]

कुंभकरण—आपने युद्ध रोकने की संभावनाओं पर विचार नहीं किया?

रावण—सोचना व्यर्थ ही होता। बिना प्रतिशोध के............

कुंभकरण—नहीं, मैं ऐसी बात नहीं कहूँगा। मेरा कहना यह है कि आपने अब तक उस स्त्री को घर में क्यों नहीं डाल लिया। राजकुमार अपने आप घर लौट जायेंगे।

रावण—वह रनिवास में रहने के लिए तैयार नहीं है अन्यथा मैं तो उसे पटरानी बना लूँ ।

कुंभकरण—नहीं, नहीं, यह तो भाभी के साथ अन्याय हो जाता ।

रावण—अन्याय कैसे हो जाता ? अब तक वह पटरानी रही तो क्या किसी के साथ अन्याय हुआ ? मैं सब रानियों को हृदय से प्रेम करता हूँ । सीता स्वीकार करे तो उसे भी बिना किसी का कुछ छीने सम्पूर्ण हृदय से प्यार करूँगा ।

कुंभकरण—भैया ! धन्य हो जाती वह स्त्री । आश्चर्य है वह स्वीकार क्यों नहीं करती ?

रावण —वह अपने पति से बड़ा किसी को नहीं मानती । उसे परमेश्वर समझती है । उसे विश्वास है कि उसका पति उसे अवश्य मुक्त करायेगा ।

कुंभकरण—वह कुछ भी सोचे । इस संकट को दूर करने का यही एक उपाय है कि राजकुमारों को तो राक्षस मार कर खा जायें और स्त्री को रनिवास में रख लिया जाय ।

रावण (चिंतित होकर)—उन्होंने मेघनाद को मार दिया । अत: अब राक्षस उनकी ओर देखते भी नहीं । वे उनके डर के मारे नींद में उछल पड़ते हैं ।

कुंभकरण—इसका अर्थ तो यह हुआ कि शत्रु साधारण नहीं हैं । उससे लड़कर शक्ति व्यय करना व्यर्थ है । सीता को ही मनाना चाहिए किसी भी उपाय से । तपस्वी अपने आप भाग जायेंगे ।

रावण —पर वह वश में आती ही नहीं । क्या करें ?

कुंभकरण—उसे लालच दीजिए ।

रावण —मैंने कर लिया उपाय । तीनों लोकों का राज्य दे दिया जाय तो भी वह राम को छोड़ कर किसी अन्य पुरुष को अपनाने को तैयार नहीं होती ।

कुंभकरण--उसे समझाइये कि राम का कुछ भी भविष्य नहीं है। लंका के वीर कभी भी उसे मार कर खा जायेंगे। इस तरह भेदनीति का आश्रय लेकर उसका मन जीत लीजिए।

रावण —उसे राम की शक्ति पर असीम विश्वास है। वह राम के हृदय पर भी सन्देह नहीं करती।

कुंभकरण—तो उसे भय दिखाओ।

रावण —भैया! उसे बहुत मैंने। उसके कण्ठ पर चन्द्रहास तलवार भी रख दी। पर वह ठस से मस नहीं होती। राक्षसियों ने भी उसे बहुत डराया।

कुंभकरण--अन्त में कोई सीमा तो ऐसी आयेगी जहाँ उसे बात माननी पड़ेगी। आप राक्षसी माया का आश्रय लीजिए।

रावण --मैंने यह उपाय भी करके देख लिया। एक बार माया से राम का पुतला बना कर उसके सामने ले गया। उसके टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिये। उस पर इस बात का भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसका विश्वास है कि राम की विजय होगी।

कुंभकरण (बहुत देर तक आँखें फाड़ कर देखता हुआ, मंद स्वर में)--मैंने ऐसी स्त्री कभी नहीं देखी। यह बात तो मेरी कल्पना में भी नहीं आई। (विचार करके) फिर एक बात कीजिए भैया! आज राम का रूप बना कर सीता के पास जाइए। उससे कहो कि रावण मार दिया है। अब तुम लंका के राजभवन में चलो। अयोध्या में जो सुख नहीं भोगे वे हम लंका में भोगेंगे।

रावण (सिर हिलाकर)—हाँ, यह बात समझ में आई। मैं अभी जाता हूँ। भगवान् शंकर की कृपा से आधी घड़ी में ही काम बन जायगा। सीता को साथ लेकर ही आऊँगा अब..................।

(सिर हिलाता, मन ही मन प्रमुदित रावण चला जाता है।)

कुंभकरण—(अपने आप)--मैंने देवता, नाग, दानव, गन्धर्व, मनुष्य आदि विविध जातियों की अनेक स्त्रियों को देखा है, पर सीता जैसी स्त्री एक भी देखने को नहीं मिली। जब उसका इतना दृढ़

संकल्प है, इतने सुन्दर विचार हैं तो अद्वितीय रूपवती भी होगी ही। मैं भी जाकर एक बार आंखों से देख तो लूँ अन्यथा जन्म धारण करना ही व्यर्थ हो जायगा।

[जाने के लिए उद्यत होता है; पर जाते-जाते रुक जाता है।]

कुंभकरण—अर मन ! किधर चलें ? भूखों के मारे प्राण कण्ठगत हो रहे हैं। आंखों के सामने काली पीली छायाकृतियाँ दिखाई दे रही हैं। पहले उदरपूर्ति कर लूँ। फिर देखा जायगा। (रुक कर) भाभी भोजन की व्यवस्था करने गई है। आती ही होगी।

मन्दोदरी --(एक ओर से आकर)--देवरजी आपकी रुचि की सब चीजें तैयार हैं। भोजन कर लीजिए।

[कुंभकरण भोजन करने के लिए चला जाता है।]

मंदोदरी --बेटा नहीं रहा तो क्या हुआ। अभी पहाड़ जैसे शरीर वाले भाई का विश्वास तो है उनको। हे प्रभो ! यह दोनों भाइयों की जोड़ी बनी रहे। बस, इनके मन में किसी बुरी भावना का अंकुर कभी न उगे।

[रावण का व्यग्रतापूर्वक प्रवेश। शरीर पसीने से लथपथ है। उसे देखकर मन्दोदरी घबरा जाती है।]

मंदोदरी --स्वामी ! क्या हुआ ? स्वस्थ तो हैं न आप ?

रावण --जा····जा····हां····न····न····न।

मंदोदरी --क्या हो गया ऐसा ? बताइये तो।

रावण --भा····भा····ई····कि····ध····र····ग····या ?

मंदोदरी --मैं अभी बुलाकर लाती हूं।

[चली जाती है। दूसरी ओर से डकारें लेते हुए कुंभकरण का प्रवेश]

कुंभकरण (रावण की उद्विग्न अवस्था को देखकर)—अरे भैया ? क्या हो गया ऐसे क्यों घबरा रहे हो ? आपकी दशा तो ऐसी हो रही है जैसे किसी ने आपको अपमानित कर दिया हो।

रावण —क्या····क्या····बताऊँ····वह····वह····

कुंभकरण —अच्छा, अच्छा, उसने विश्वास कर लिया होगा। मुझे इसमें सन्देह ही नहीं था। (हँसकर) तो अब समझा मैं। आप तो प्रसन्नता के मारे ऐसे भाव-विभोर हो रहे हो; परन्तु, अपने शरीर की दशा को तो देखिए। देखने वाले तो कुछ और ही समझ जायेंगे।

रावण —भैया ! तुम तो हँसी उड़ा रहे हो। वह वश में कहां आती है ? अरे रे····अब तो मेरी दशा ही न जाने कैसी हो गई। न जाने क्या हो गया है मुझे ?

कुंभकरण (उद्विग्न होकर)—क्या हुआ ? कैसे हुआ ? (रावण के मुँह की ओर देखने लगता है।)

रावण (उदासी भरे स्वर में)—क्या बताऊँ ? राम का रूप धारण करके तुम्हारे कहने के अनुसार मैं सीता के पास गया था।

कुम्भकरण —अच्छा, तो उठकर स्वागत किया होगा उसने ?

रावण —कैसा स्वागत ? वह तो अपने ही विचारों में खोई हुई-सी बैठी थी। मैंने पांव की ध्वनि से उसका ध्यान तोड़ना चाहा; पर वह ऐसे बैठी थी जैसे उसके शरीर में प्राण ही न हों।

कुम्भकरण —फिर क्या हुआ ? (आश्चर्य से रावण की ओर देखता रहता है।)

रावण —फिर मैं उसके सामने चला गया। उसने आँखें ऊँची करके भी नहीं देखा मुझे। फिर मैंने उससे कहा सीते !'·········बस, इसके बाद मैं बोल ही नहीं सका। भैया ! क्या बताऊँ ? मेरे मन में तो राम का रूप बनाते ही सीता के विषय में पवित्र भाव उठने लग गये। मैं इस बात को ही भूल गया कि उसे धोखा देना चाहिए !

कुंभकरण—और वह क्या बोली ?

रावण —वह तिनके की ओट लेकर कहने लगी—'लौट जा मायावी ! इस तरह मुझे धोखा नहीं दे सकेगा।' इसके पश्चात् मैं तो भाग आया। मेरी छाती अब तक धक्-धक् कर रही है।

कुंभकरण (विचार करता हुआ गम्भीर होकर)—भैया! फिर सीता को वश में करने का विचार छोड़ दो। वह साधारण मानवी नहीं है। वह शक्ति का अवतार है। उसे शक्ति राम से प्राप्त होती है—उस राम से जो कभी झूठ नहीं बोलता, कभी किसी को धोखा नहीं देता और अपनी पत्नी को पवित्र मान कर प्रेम करता है। अब उस राम के हाथों हमारी पराजय होगी।

रावण (कुम्भकरण की ओर देखता हुआ)—भैया! तू भी उन साधारण मनुष्यों से डर गया ऐसा जान पड़ता है।

कुंभकरण मैं डरता तो यमराज से भी नहीं हूँ। परन्तु, यह बात जान गया हूँ कि हम लोगों को हराने वाला उत्पन्न हो गया है। वह अपने गुणों से ही हम लोगों को हरायेगा और हम अपने अवगुणों से हारेंगे। (थोड़ा रुक कर) इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं आपका साथ नहीं दूंगा। इस संकट में मैं आपके साथ हूँ।

रावण --(प्रसन्न होकर) मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी भैया!

कुंभकरण--मैं लड़ूंगा उससे। पहले मन में इच्छा थी कि सीता को एक बार देख लूँ; पर अब उस राम को ही देखना चाहता हूँ जिसमें मुझे सीता भी मिल जायेगी। (आँखें बन्द करके गम्भीर स्वर में) जिसका रूप धारण करने से भी मन में इतने उच्च विचार उठ सकते हैं वह राम कैसा होगा? कैसा होगा? (शीघ्रतापूर्वक) मैं जा रहा हूँ राम को देखने। या तो भैया! आपका संकट क्षण भर में दूर कर दूंगा उसे मारकर अथवा अपने अवगुणों को उसके गुणों से पराजित होने दूंगा ····अपने अवगुणों को हारने दूंगा। जिसका रूप धारण करने से········ जिसका रूप········धारण करने से········इतने उच्च विचार········ जन्म ले सकते हैं········उससे········उससे हार जाऊंगा········ उससे हार जाऊंगा। [चला जाता है। रावण विचारमग्न बैठा रहता है।] [पटाक्षेप]

उद्घाटन एक यात्रा का

पात्र

पार्थसारथी

श्यामा

पंडितजी

मन्त्रीजी

उद्‌घाटन एक यात्रा का

[एक उच्च मध्यवर्गीय परिवार के आवास का एक प्रकोष्ठ। साधारण; पर सुरुचिपूर्ण सज्जा। एक ओर बैठने के लिए सोफा रक्खा हुआ है। उसके सामने की दीवार के पास एक पट्टे पर गणेश की मूर्त्ति रखी हुई है। पट्टे के सामने हवन के लिए वेदी बनी हुई है। थाली में पूजा की सामग्री है। बाहर पंडाल में आमन्त्रितों के लिए अल्पाहार की व्यवस्था की गई है। मंच पर बाहर का दृश्य दिखाई नहीं पड़ता। बाहर से बीच-बीच में कुछ अस्पष्ट आवाजें सुनाई पड़ती रहती हैं। मि० पार्थसारथी लगभग २८ वर्ष का सजीला नवयुवक है। उसकी पत्नी श्यामा २२ वर्ष की सुन्दरी है। पण्डित जी ५० वर्ष से अधिक के वृद्ध सज्जन हैं और मंत्रीजी लगभग ३५ वर्ष के। मञ्च पर संध्या का दृश्य है जो धीरे-धीरे रात्रि में परिवर्तित होता जाता है।]

पार्थसारथी—यह पण्डित को क्या हो गया ? पांच बजे का समय दिया था उसे और अब साढ़े छह............

श्यामा —पंडित भी जानता है कि मंत्री जी अत्यधिक व्यस्त आदमी हैं। आठ बजे के पहले नहीं आने के।

पार्थसारथी —दस बजे ट्रेन जाती है। समय ही कितना रह गया अब ? (लम्बी साँस लेकर) उहँ, उद्घाटन क्या, जी का जंजाल हो गया यह तो।

श्यामा—स ऽ ऽ ब हो जायगा जी ! घबराते क्यों हो ? मुहूर्त तो टले नहीं ! साढे आठ तक अमृत है और आगे दस बजे तक लाभ।

पार्थसारथी—अमृत की घडी तो छह बजे से शुरू हो गई थी, फिर भी पंडि अभी तक क्यों नहीं आया ?

श्यामा—तुमने तो पंडित को पांच बजे का समय दिया था। काल दुघड़िया चल रहा था उस समय। पंडित जरूर समझ गया हो कि................

पार्थसारथी —क्या समझ गया होगा पंडित ?

श्यामा—यही कि यात्रा पर जाने वाला या तो नास्तिक है या बिल्कु नासमझ।

पार्थसारथी —उहँ ! मैं नास्तिक हूँ ही। जब इस बात को तुम जानती हो तुमने यह ऐसा आयोजन ही क्यों रक्खा ?

श्यामा—आयोजन विशेष प्रयोजन से रक्खा गया है जी ! आप इ लम्बे टूर पर जा रहे हो और यह पहला टूर है आपका। दादाजी हरिद्वार को यात्रा करने गये थे तब उनको सभी गांव की सीमा तक पहुंचाने गये थे। खूब बाजे बजे थे लौटकर आने पर उत्सव मनाया गया था।

पार्थसारथी —उस समय पैदल या बैलगाड़ी से यात्रा की जाती होगी। इस लोग बिछुड़ने वाले को विदा करते थे और उसके लौट कर पर खुशियां मनाई जाती थीं। अब हजार मील की यात्रा ह जहाज से एक दिन में.............

श्यामा—जाओ....जाओ। विज्ञान ने नये साधन दे दिये तो यात्रा में तो कम लगने लगा; पर यात्रा में खतरा कितना बढ गया ?

पार्थसारथी —खतरा उस समय कम था क्या ? रास्ते में जंगली जानवरों का खतरा, चोरों और ठगों का खतरा, बीमारी का खतरा और···· कोई एक खतरा हो तो। पद-पद पर खतरा था।

श्यामा—और आज की बात सोची आपने ? बस चूक जाने का खतरा, टिकिट न मिलने का खतरा, जेब कट जाने का खतरा, बस या ट्रेन के टकरा जाने का खतरा, सामान खो जाने का खतरा, होटल में जगह न मिलने का खतरा और कहां तक गिनाऊँ ? आज सड़क पार करना भी खतरे से खाली नहीं है।

पार्थसारथी —तो तुम्हारा यह आयोजन खतरा कम कर देगा ?

श्यामा—कुछ तो होगा ही। पूजा और हवन से देवता प्रसन्न होंगे, मन को सन्तोष होगा और खतरा टलेगा ही। इधर मंत्री जी यात्रा का उद्‌घाटन करेंगे तो लोगों पर आपका रौब पड़ेगा। आपके लिए आगे से आगे सब प्रबन्ध हो जायगा—देख लेना।

पार्थसारथी —आगे से आगे प्रबन्ध तो 'टिप' से हो ही जाता है। और, हवन-पूजा आदि के प्रभाव पर मुझे विश्वास है नहीं। मैंने तो केवल तुम्हारे कहने को मान कर············।

श्यामा—हवन-पूजा का यह क्या प्रभाव कम है कि तुमने मेरी बात मानी। वरना तुम मेरी परवाह ही कब करते हो ? (सिर झुका लेती है।)

पार्थसारथी —लो, तुम तो रूठने लगी। रानी ! मैं तुम्हारी सभी बातें तो मान लेता हूँ।

श्यामा—कहाँ मान लेते हो मेरी सभी बातें ? मुझे बनाते हो। सारी बातें तो उस रूबी की मानते हो। दफ्तर वालों को सब मालूम है कि तुम उसके सब कागजों पर बिना पढ़े ही हस्ताक्षर कर देते हो। मैंने तो उस दिन साड़ियों का बिल चुकाने के लिए चेक मांगा था उसी पर········

पार्थसारथी (झुंझलाकर)— अब तुम यही तो नहीं समझती कि········

श्यामा—(आँखों में आँसू भरकर)-- हाँ, मैं तो रही अनपढ़ गँवई गाँव की मैं क्या समझूँ ? और, वह............

पार्थसारथी (सावेश)-- श्यामा ! तुम कुछ तो विचार करो। दफ्तर के ड्राफ पर हस्ताक्षर करना और बात है और चेक पर हस्ताक्षर करना और बात है। बैंक में बैलेंस हो तभी तो चेक काट कर दूँ किसी को।

श्यामा--अच्छा जी, आपकी मरजी। मुझे क्या लेना देना है।

पार्थसारथी -अब यात्रा पर जाते समय तो नाराज क्यों होती हो ? लम्बी यात्रा है। कोई ऐसी वैसी बात निकल जाय मुँह से.....अब तु सोचती तो हो नहीं।

श्यामा--(सामने की ओर देख कर) :लो, वे पंडित जी भी आ गये। अ शान्ति से बैठकर फटाफट हवन-पूजा से निपट लो। तब त मंत्रीजी..........

पार्थसारथी -मुझे क्या निपटना है, तुम निपटाओ सब काम को। मैं भी जै तुम कहोगी वैसा कर लूंगा। (कुछ सुनने का यत्न करता हुआ यह पंडाल में शान्ति कैसी है ? अब तो काफी लोग आ गये होंगे

श्यामा—हाँ बहुत से लोग आ गये हैं। पहले तो जोर जोर से बातें कर थे। आखिर, कब तक बोलते रहें ?

['नारायण हरि ! नारायण हरि ! कहते हुए वृद्ध पंडितजी का प्रवेश।]

पंडितजी -नमो, नमो ! बहूजी ! सामग्री तो सारी मँगवा ली न ?

श्यामा--सब मंगवा ली पंडितजी ?

पडितजी -अच्छा, अच्छा नारायण हरि ! (सामने देखकर) तो यहाँ रक्खा पूजा का प्रबन्ध। हुँअ ! सिंहासन पर विनायक रख दिये, दीप जला दिया, सामग्री थाली में रक्खी हुई है। सब काम 'रेडी' है (कुछ चौंक कर)अरे ! पूजन की थाली में यह चोटी बांधने का रख दिया बहूजी !

श्यामा---पंडित जी ! यह तो रिबन हैं इसे द्वार पर बाँधना है।

पंडितजी - द्वार पर आम के पत्तों की वन्दनवार बांधदी होगी न। अब इसकी क्या आवश्यकता है ?

पार्थसारथी--पंडितजी ! इसको तो दरवाजे के बीच में बांधना है। उद्घाटन करते समय मंत्रीजी इसी को कैंची से काटेंगे।

पडितजी ---अब बाबू साहब ! मैं क्या जानूँ ये सब बातें ? आप कहेंगे वैसा कर दूंगा। हमने तो ऐसी बातें कभी देखी नहीं साहब !

पार्थसारथी—अभी तो नया जमाना आया है पण्डितजी ! न जाने क्या क्या देखोगे। खैर, अब आपका काम जल्दी निपटाओ।

नेपथ्य से स्वर—मि० सारथी ! मंत्रीजी सरकिट-हाउस में आ गये हैं। उन्होंने फोन पर कहा है कि अगले १० मिनट में वे यहाँ पहुंचेंगे।

पार्थसारथी –थेंक्यू मि० गोयनका ! मैं अभी निपटता हूँ।

नेपथ्य से स्वर— मैं द्वार पर पहुंचता हूँ। पंडाल खचाखच भर गया है।

पार्थसारथी –अच्छा !

पण्डितजी – ओ३म् गणानान्त्वा गणपति गुं·········' आओ बाबू साहब ! भगवान् गणपति को हाथ जोड़ कर प्रणाम करो।

पार्थसारथी –अच्छा पण्डितजी ! (हाथ जोड़ लेता है।)

श्यामा—बैठकर पूजन करो जी ! यह क्या खड़े खड़े ही·······

पण्डितजी –हां साहब ! आचमन कीजिए।

पार्थसारथी –(बैठ कर हाथ में बरफ की डली लेकर चाटता हुआ)—लीजिए पण्डित जी !

श्यामा—वो क्या हुआ पण्डित जी ! नल ही बन्द हो गया। सो थर्मस में से बरफ की डलियां रख दी हैं। इनसे काम चल जायगा न ?

पण्डितजी —हां, क्यों नहीं बहूजी ! आपद्धर्म में सब कुछ चलता है। हूं तो ·······स्नानं, वस्त्रं, चन्दनं, धूपं, दीपं, नैवेद्यं, ताम्बूलञ्च समर्पयामि हाथ जोड़िये साहब ! जोड़े से।

[पति-पत्नी दोनों हाथ जोड़ते हैं। पंडित हवन के लिए अग्नि प्रदीप्त करता है।]

पण्डितजी—हां साहब ! आप दोनों 'स्वाहा' कहकर हवन सामग्री अग्नि में डालिये—ओ३म् अग्नये स्वाहा, इन्द्राय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, सोमाय स्वाहा !

[पार्थसारथी और श्यामा 'स्वाहा' कहकर हवन सामग्री अग्नि में डालते हैं।]

पार्थसारथी—जल्दी कीजिए पंडितजी ! मन्त्रीजी आने ही वाले हैं।

पण्डितजी—बस साहब ! अपना तो काम हो गया। पूर्णाहुति के पहले कुछ शास्त्र-वचन सुनिये। भगवान मनु ने कहा है-दृष्टिपूतं न्यसेत्पादम्। सो भगवन् ! चलते समय आगे पीछे देख लेना चाहिए। यात्रा में कभी किसी का दिया हुआ खाद्य पदार्थ ग्रहण नहीं करना चाहिए और न ही खुली रक्खी हुई मिठाई खानी चाहिए।

श्यामा—पंडितजी ! आप तो शास्त्रज्ञ हैं। व्यवहार की कुछ और बातें सक्षेप में बता दीजिए।

पंडितजी—बहूजी ! शास्त्र के वचन बहुत गूढ़ हैं। उनका रहस्य जानने वाले ही जानते हैं। अब एक यही देखिए—रूखी सूखी खाय कै, ठंडा पानी पी। यात्राकाल में तर माल कभी न खावे और गरम पानी याने कि चाय आदि नहीं पिये। चाय पीने से बार बार शंकाओं के लिए उठना........

पार्थसारथी-(झुंझलाता हुआ स्वर) लो काम पूरा हो गया हो तो मैं बाहर जाऊं ?

पंडितजी—बाहर तो आपको महीना भर रहना है बाबू साहब ! घर में तो सिर्फ....हाँ तो बहूजी ! साहब के टीका कर दीजिए और 'सर्वं वै पूर्णं गूँ स्वाहा' यह पूर्णाहुति हो गई साहब ! तिलक यज्ञ की भस्म से पहले, रोली का बाद से। हाँ तो....

श्यामा - (तिलक करती हुई) यह लीजिए।

पंडितजी --हाँ, सुस्ति न इन्द्रो विर्धं स्रवाहा सुस्ति नः पूखा विश्ववेदा।
सुस्ति नः तारक्ष्यो अरिष्टनेमिः सुस्ति नो व्रिरस्पतिः दधातु।
यह सुस्ति-वाचन हुआ साहब! यात्रा में कहीं भी सुस्ती नहीं बरतना चाहिए। हर काम टैम पर होना चाहिए। अब दक्षिणा दीजिए बहूजी! ग्यारह रुपये आपकी ओर से और साहब अलग से देंगे शर्धा के अनुसार।

श्यामा—पंडितजी ग्यारह क्यों? दस ही क्यों नहीं?

पंडितजी--नहीं जी! ग्यारह ही होंगे। दस रुपया दक्षिणा और एक रुपया सरचार्ज। सरकार भी तो ऐसे ही लेती है।

श्यामा--अच्छा, यही सही। (ग्यारह रुपये देती है।)

पार्थसारथी-पंडितजी! आपके पास तो चढ़ावे में पैसे आते होंगे। दो रुपये की रेजगी दे दीजिए।

पंडितजी--आजकल पूजा में भी पोस्टकार्ड चढ़ाये जाते हैं साहब! लीजिए एक रुपये की रेजगी ले लीजिए और एक रुपये के पोस्टकार्ड।
[पार्थसारथी दो रुपये का नोट देकर रेजगी और पोस्टकार्ड लेता है।]

पार्थसारथी-पंडितजी सवा रुपया मुझसे ले लीजिए पूजा के।

पंडितजी --राम राम? कैसी बात करते हैं? पुण्य की जड़ पाताल तक जाती है। इसे जितना सींचोगे उतना ही लाभ होगा। बहूजी ने ग्यारह दिये हैं। आपकी ओर से कम से कम इक्कीस तो होने ही चाहिए।

पार्थसारथी-पंडितजी! बहूजी तो धर्म कर्म की जानने वाली ठहरीं और मैं हूँ नास्तिक। मैंने तो उन्हीं के कहने से......................

पंडितजी -आप नास्तिक हैं? नारायण हरि! नारायण हरि! तब मैं एक पैसा भी नहीं लूँगा साहब! नास्तिक का पैसा............हरे हरे!

बहूजी ! आप तो नहीं हैं नास्तिक ? हाँ बता दीजिये । उँह मैं जा रहा हूँ साहब !

पार्थसारथी —पण्डित जी ! नास्तिक से दक्षिणा नहीं लें तो मत लीजिए; पर कुछ नाश्ता-पानी तो..........

पंडित जी —नहीं साहब ! मैं तो बहूजी का पुरोहित हूँ । मेरा काम पूरा हो गया । अब आपके पुरोहित आयेंगे । नाश्ता उन्हें ही करादें । और............(कुछ सोचते हुए) हां, याद आया । आप चलने के पहले देहली पर धीरे से ठोकर मार दें ।

श्यामा—ठोकर क्यों पण्डित जी ! इससे क्या होगा ?

पंडित जी —शास्त्र-वचन है बहूजी ! कि ठोकर खाने पर मनुष्य को समझ आती है । इसलिए ऐसा कर लेना चाहिए । अब मैं जा रहा हूँ । कोई बात पूछनी हो तो...... घर पर ही रहूँगा ।

[चला जाता है । मंत्रीजी का आगमन । सब उनका स्वागत करते हैं ।]

पार्थसारथी — आइये ! पधारिये श्रीमन्, अभी आपकी ही बात चल रही थी । मैं कह रहा था कि आप नवयुग के पुरोहित हैं ।

मंत्री जी —(झेंपता हुआ) मि० सारथी ! आप मेरे मंत्रालय में नहीं हैं फिर भी मैं आपके काम करने के ढग को जानता हूँ । मंत्री लोगों को अच्छा-बुरा बनाने वाले तो आप अफसर लोग ही हैं । (श्यामा की ओर देखकर) क्यों देवी जी ! सच कहता हूँ न ?

श्यामा —(संकोच से नीचे देखती हुई)—अफसर तो आप लोगों के हाथ की कठपुतली होते हैं श्रीमन् ! जैसे नचाना चाहें नाचना पड़ेगा उन्हें ।

मंत्रीजी—(हँसकर, कटाक्षपूर्वक)—बड़ी बुद्धिमती हो देवीजी ! हमारे हथियार से हमको ही काटती हो । मैं ऐसी देवियों को बहुत

पसन्द करता हूं। मि. सारथी अगली बार नेपाल में भारत का शिष्ट-मण्डल जा रहा है। मैं चाहता हूं कि उसमें आपकी पत्नी भी जाये। कहें तो सिफारिश कर दूं।

र्थसारथी--आपकी कृपा ही होगी यह....पर....

मन्त्रीजी--नहीं, नहीं कृपा की क्या बात है? हम भारतीयों ने नारी जाति को बन्दी बना कर रसोई घर में बन्द कर रक्खा है। आप तो समझदार हैं। अपनी पत्नी को मानसिक विकास के लिए उपयुक्त अवसर अवश्य दीजिए। इसमें किन्तु परन्तु नहीं करें। आखिर ऐसे अवसर बार-बार थोड़े ही आते हैं।

ार्थसारथी--जी हाँ श्रीमन् !

मन्त्रीजी--तो बात पक्की रही। मैं आज ही सिफारिश कर दूंगा। और तकलीफ बिल्कुल नहीं होगी। कोई बात हुई तो मैं साथ रहूंगा ही।

ार्थसारथी (कुछ सोचता हुआ) --जी श्रीमन् !

मन्त्रीजी--आपको अपनी पत्नी से ईर्ष्या नहीं होगी न? (मुस्कराते हुए) ऐसा है कि एक दूसरा व्यापार-शिष्ट मंडल अफगानिस्तान जायगा जल्दी ही। उसमें आपको भी.......।

ार्थसारथी-(प्रसन्न होकर) जी, जी।

मन्त्रीजी-(श्यामा को ओर घूर-घूर कर देखते हुए) मि. सरा! हम सामाजिक कार्यकर्त्ता इस बात को जानते हैं कि किस व्यक्ति में कितनी प्रतिभा है? आपकी पत्नी को अवसर मिले तो यह मंत्री तक बन सकती हैं। आप बहुत सौभाग्यशाली हैं कि आपको इतना सुन्दर और प्रतिभाशालिनी पत्नी मिली।

ार्थसारथी-(झेंपते हुए) जी....जी! आप बहुत गुणग्राही हैं।

मन्त्रीजी-असल में मनुष्य को पहचानने की बात मैंने महात्मा गांधी से सीखी है मैं उनका इतना प्रिय हो गया था कि मुझे ही बार-बार जेल

भेजा करते थे। उन्होंने ही कहा है--यत्र नारीस्तु पूज्जन्ते रमन्ते तत्र देवता। उनकी इस बात को नेहरूजी भी मानते थे।

पार्थसारथी--हां, श्रीमन् ! पं० नेहरू स्त्रियों का बड़ा आदर करते थे।

मंत्रीजी--बस, हमने उन्हीं से यह गुरु मंत्र सीखा है। (श्यामा से) देवीजी ! आपका नाम बता सकेंगी।

श्यामा—जी, श्यामा।

मंत्रीजी —आहाऽऽ, क्या नाम है ? आप गोर वर्ण की और नाम श्यामा ! कंट्रास्ट के द्वारा सौन्दर्य प्रतीति कराने का मनोवैज्ञानिक फारमूला इसको कहते हैं। ठीक है न मि० सारथी ?

पार्थसारथी--हां, श्रीमन् ! मैंने पहले इस ओर ध्यान ही नहीं दिया था। (हँसने की चेष्टा करता है।)

मंत्रीजी-हां, तो श्यामा जी ! अपने पति के साथ आप भी बिस्तर बांध लीजिए। ४-५ दिन में ही शिष्टमण्डल रवाना होगा। वैसे हम लोग राजकीय अतिथि होंगे। इसलिए अधिक बोझा मत बांध लेना।

श्यामा--(उदास मन से)—अच्छा !

पार्थसारथी--श्यामा ! मंत्री महोदय की कृपा से कितना सुन्दर अवसर मिल गया तुम्हें ? [श्यामा नीची आंखें करने झांकती रहती है। कोई उत्तर नहीं देती।]

मंत्रीजी-अच्छा ! अब उद्घाटन की औपचारिकता पूरी करलें।

पार्थसारथी-हां श्रीमन (उच्च स्वर से)। मि० गोयनका ! सब तैयार है न ?

नेपथ्य से स्वर---बिल्कुल तैयार है।

पार्थसारथी--उधर दरवाजे की ओर चलिए श्रीमन् ! वहीं फीता काट कर यात्रा का उद्घाटन कीजिए।

मंत्रीजी--चलिए। हां, एक बात है। द्वार से बाहर निकल जाने के बाद आप भीतर न आ सकेंगे मि० सारथी ! बाहर से सीधे स्टेशन चले

जायेंगे इसलिए शकुन के लिए हाथ में अटेची तो ले लीजिए। शेष सामान फिर चला जायेगा।

पार्थसारथी–अच्छा श्रीमन् ! (अटैची हाथ में उठा लेता है)

श्यामा—ठहरिये। मैं आरती उतारूंगी।

मंत्रीजी —अरे श्यामाजी ! आप तो भारतीय संस्कृति की पूरी भक्त हैं। जरूर उतारिये आरती।

[श्यामा थाली में दीपक जलाकर आरती उतारती है।]

पार्थसारथी–श्यामा मुझे बहुत प्यार करती है श्रीमन् !

मंत्रीजी – ऐसी देवियाँ प्रेम की प्रतिमाएँ होती हैं मि० सारथी ! (कुछ-सोचकर) हाँ, आपका रिजर्वेशन तो हो गया होगा ?

पार्थसारथी–नहीं श्रीमन् ! वेटिंग-लिस्ट में नाम है।

मंत्रीजी —कोई बात नहीं। मेरी कार आपको छोड़ आयेगी। थोड़े जल्दी चले जायें। अर्दली आपके रिजर्वेशन का प्रबन्ध कर देगा। मंत्रियों के लिए कोटा होता है। उसमें से एक बर्थ अवश्य मिल जायेगी।

पार्थसारथी–आपकी बड़ी कृपा है श्रीमन् ! आप ही हमारा ध्यान नहीं रखेंगे तो......................

मंत्रीजी —मि० सारथी ! मंत्री भी आदमी ही होता है और दूसरे आदमी की कठिनाई को समझता है। आपको मार्ग में या और कहीं कोई कठिनाई हो तो मेरा हवाला देकर काम बना लेना।

पार्थसारथी–बहुत आभारी हूँ श्रीमन् ? चलिये अब उद्घाटन का कार्य सम्पन्न कीजिए। (घड़ी देखकर) ओह ? साढ़े आठ हो गये।

मंत्रीजी —कोई बात नहीं। आप सीधे स्टेशन चले जायँ कार से। गाड़ी आने में अभी पूरा एक घण्टा है। यहाँ का खान-पान का कार्यक्रम तो हो जायगा। आपको उसमें क्या करना है। सब खा पी कर चले जायेंगे।

पार्थसारथी–अच्छा सर !

मंत्रीजी --मि० सारथी, आज मेरे द्वारा उद्घाटन का भी उद्घाटन है। मंत्री बनने के बाद पहली बार यह उद्घाटन कर रहा हूँ।

पार्थसारथी (हँसकर)---संयोग की बात है श्रीमन् ! मेरा सौभाग्य है कि श्रेय मुझे मिला।

[मंत्रीजी एक ओर चले जाते हैं। उनके पीछे अटैची लिये हुये पा सारथी और श्यामा द्वार की दिशा में जाते हैं।]

नेपथ्य से स्वर---कैंची हाथ में लेकर एक मिनट रुकिये श्रीमन् ! फोटोग्रा को फोटो लेना है।

नेपथ्य से मन्त्री का स्वर—यह फोटो अखबारों में छपेगा क्या ?

नेपथ्य से मन्त्री का स्वर—हाँ श्रीमन् !

नेपथ्य से मन्त्री का स्वर—तब ठीक है। (ठहर कर) ले लिया फोटो ? यह लो फीता काट कर उद्घाटन कर दिया मैंने।

[तालियों की ध्वनि सुनाई पड़ती है।]

नेपथ्य से उच्च स्वर में--मन्त्रीजी जिन्दाबाद ! मंत्रीजी जिन्दाबाद !

[मंत्रीजी और श्यामा का प्रवेश]

मन्त्रीजी --आइये श्यामा जी ! बैठिये। आज के आयोजन ने आपको ब थका दिया मालूम होता है।

श्यामा (संकोचपूर्वक)—नहीं, ऐसी तो बात नहीं है। (कुछ मुस्काने चेष्टा करती है।)

मन्त्रीजी (चेहरे पर दृष्टि डालता हुआ)--हां, अब तो कोई बात हु सुन्दर मुख मुस्काता हुआ ही अच्छा लगता है। (कुछ सुनने चेष्टा करता हुआ) बाहर लोगों ने खाना पीना शुरू कर दिया है

श्यामा— मैं आपके लिए भी प्लेट लाती हूँ। (बाहर जाकर हाथ में प्ले लेकर आती है।) लीजिए।

मन्त्रीजी—आप खिला रही हैं इसलिए खाना पड़ेगा। पर, आपको भी मे साथ देना पड़ेगा।

[मंत्री जी खाना आरम्भ करते हैं। संकोचपूर्वक श्यामा भी कुछ ले लेती है।]

मंत्रीजी देखिये, आपके घर में ही आप इतना संकोच कर रही हैं। इस तरह संकोच करती रहीं तो नेपाल यात्रा के बीस दिनों में तो आप सूख कर ठठरी हो जायेंगी।

श्यामा—नहीं, नहीं, संकोच की कोई बात नहीं है। आप लीजिए।

मंत्रीजी—मेरी कार मि० सारथी को पहुंचा कर घण्टे भर में आयेगी। तब तक हम लोग अपनी यात्रा का कार्यक्रम बना लें।

श्यामा—(संकोचपूर्वक)—जैसी श्रीमान् की इच्छा।

मंत्रीजी—इच्छा तो श्यामा देवी की ही चलेगी। मैं तो अकेला हूँ। मेरी क्या इच्छा और क्या अनिच्छा!

श्यामा—तो आप जैसा कहेंगे वैसा.... ...

मंत्रीजी—आपका यह आज का आयोजन बड़ा ही सुन्दर रहा। मैं चाहता हूँ कि ऐसा ही यात्रा के उद्घाटन का आयोजन मेरे घर पर रक्खा जाय। मुख्यमंत्री को बुला लेंगे। व्यवस्था की देखभाल आपको ही करनी होगी। मैं कुछ नहीं समझता इन बातों में।

श्यामा—जो कुछ मुझ से होगा कर दूंगी मैं।

मंत्रीजी—ठीक है तो परसों का निश्चित रहा। उदघाटन के बाद घर में प्रवेश करना उचित नहीं होगा। इसलिए सरकिट हाउस में रह जायेंगे। दूसरे दिन हवाई जहाज से नेपाल।

[श्यामा कुछ सोचती-सोचती अन्यमनस्क सी हो जाती है।]

मंत्रीजी—अरे! तुम तो न मेरी बात सुन रही हो और न कुछ खा रही हो। (रसगुल्ला हाथ में लेकर) लो यह खाओ। तुम नहीं खा रही हो इसलिए मुझे यह ज्यादती करनी ही पड़ेगी।

[रसगुल्ला श्यामा के मुँह में रख देता है। वह अनिच्छापूर्वक खा लेती है।]

श्यामा—शिष्टमण्डल में कितने लोग होंगे?

मंत्रीजी—अधिक नहीं होंगे। हम लोगों के अलावा मेरा सचिव होगा और अर्दली। अधिक लोगों की भीड़ मुझे पसन्द नहीं है। चाहोगी तो तुम्हारी कंपनी के लिए मि० सारथी की टाइपिस्ट मिस रूबी को लिया जा सकता है। उससे तो तुम्हारा परिचय होगा ही।

[श्यामा चौंक कर अस्थिर हो जाती है।]

मंत्रीजी—ठीक है। रूबी को छोड़ो। तो उद्घाटन के लिए परसों का दिन तय रहा। मैं बाहर जाकर सभी लोगों को निमन्त्रित कर देता हूँ।

[बाहर जाते हैं। श्यामा विवशता के कारण उदास बैठी रहती है।]

[पटाक्षेप]

नामकरण

** पात्र

विलियम

रोजी

मेरी

डॉ० गुप्ता

सेन बाबू

नामकरण

[एक छोटे से फ्लेट का बरामदा। छह-सात कुर्सियां जमी हुई हैं। एक कोने में मेज पड़ी है। सामने बरामदे से अन्दर कमरे में जाने के लिए दो दरवाजे दिखाई पड़ रहे हैं। उन पर सुन्दर परदे लटक रहे हैं। कुर्सियों पर रोजी और विलियम, पहले से बैठे हैं। मेरी और डॉ० गुप्ता आकर उनके पास ही बैठ जाते हैं। नेपथ्य से वाद्य संगीत का धीमा स्वर सुनाई देता है जो वार्तालाप के समय बन्द हो जाता है। समय--संध्याकाल। धीरे-धीरे मञ्च पर सध्या का अन्धकार बढ़ता जाता है। वार्तालाप सामान्य रूप से चलता है। बीच-बीच में उत्तेजना के मारे विलियम और रोजी का स्वर ऊंचा हो जाता है।]

विलियम—मित्रो ! आपने मेरे गरीबखाने पर पधार कर बड़ी कृपा की। मैं आपका स्वागत करता हूं।

रोजी (कुछ शरमाते हुए)—मैं भी आप लोगों का वेलकम याने स्वागत करती हूं।

विलियम—मित्रो ! आपको मैंने इसलिए कष्ट दिया है कि……कि……
(रोजो से) हां आगे क्या कहना है ?

रोजो—ओह ! इतनी बार बताया था मैंने । फिर भी भूल गये ? तुम्हारी मेमोरी याने तुम्हारी यादगार बड़ी कमजोर है ।

एक साथ हंस पड़ते हैं । रोजो शरमा जाती है ।]

विलियम—प्रिये ! मेरी यादगार या याददाश्त ?

रोजो—(उतावली सी होकर)--अरे....रे ! क्या कह गई मैं ? सचमुच यादगार नहीं याददाश्त । बहुत कमजोर है तुम्हारी याददाश्त ।

विलियम--(तेज स्वर में) इस तरह व्यक्तिगत बातें करके इतने लोगों को 'बोर' याने कि....परेशान मत करो । तुम्हीं बताओ इन भाइयों को अपनी समस्या ।

रोजो—समस्या....कैसी समस्या ! एक बात पूछनी है । इसे क्या समस्या कहेंगे ?

विलियम--ओहो ! समस्या नहीं है तब तो मैं ही कह दूंगा । (औरों से) भाइयो ! हमने विलायत से एक कुतिया मंगवाई है -

रोजी—और हम उसका नामकरण संस्कार करना चाहते हैं ।

विलियम--देखो, तुम्हारी यही बुरी आदत है । तुम मेरी बात को बीच में मत काटा करो ।

रोजी--बात कुछ हो तो उसे काटूं । (मुंह बना कर) बात न बात का नाम, कहूँ तो बदनाम, न कहूं तो बदनाम ।

विलियम--(चौख कर) रोजी ! शट-अप याने कि चुप रहो ।

रोजी--(तिरछी निगाह से झाँकती हुई)--बाई गॉड ! क्या कहने हैं इस अदा के ? देट्स व्हाई आई लव यू डीयर याने कि मैं तुम्हें इसीलिए प्यार....।

विलियम---(क्रोध से सिर झिटकते हुए) – बकवास ! प्यार....प्यार....प्राइयं याने कि........।

रोजी--यू शुड से डीयर याने कि....चलो जाने दो। इतने भले आदमी हमारे घर आये हैं। इनको बोर करना सिन याने कि पाप है।

विलियम – उहँ....(चुप हो जाता है)।

रोजी – (मुस्कराते हुए) – भाइयो ! डेजी याने कि मैं उसका नाम डेजी रखना चाहती हूँ।

विलियम - शट-अप, ऐसा नाम हमारी संस्कृति याने कल्चर से मेल नहीं खाता। क्यों भाई साहब।

रोजी – (झुंझलाकर) नाम का संस्कृति से क्या सम्बन्ध ? डेजी कितना स्वीट याने कि मधुर नाम है ?

डॉ० गुप्ता--देखिये बहिनजी ! अपनी इस बात से हमारा मतभेद है। नाम का संस्कृति से अटूट सम्बन्ध है। कुतिया........

रोजी--माफ कीजिए उसे विलायत से मंगाया गया है और 'कुतिया' कहने से उसका अपमान होता है।

डॉ० गुप्ता—उसका अच्छा-सा मधुर नाम रखिये फिर उसे कोई भी कुतिया' नहीं कहेगा। यों अभी आपके पतिदेव ने भी उसे कुतिया ही कहा था।

रोजी—आई डेम केयर फार पतिदेव याने कि मैं........

विलियम—(जोर से) रोजी ! जरा सोचो। तुम मेरा अपमान कर रही हो।

रोजी—बिल्कुल नहीं। असल में डेजी तुमको फूटी आँखों भी नहीं सुहाती।

विलियम—झूठ, एक दम झूठ। मुझे नहीं सुहाती तो मैं उसका नामकरण-संस्कार क्यों करवा रहा हूँ ! बात यह है कि मैं उसका सांस्कृतिक नाम रखना चाहता हूँ।

डॉ. गुप्ता—यही तो मैं भी कहता हूँ। नाम ऐसा हो कि....मैं कह रहा था मधु, नाम कैसा रहेगा ?

रोजी—(मुँह बना कर)–यह भी कोई नाम हुआ। इसके बजाय 'स्वीटी' कहें तो कैसा रहे ?

मेरी—यस.....यस....यह नाम मुझे पसन्द है। बधाई देती हूँ रोजी ! तुमने इस नाम में भारतीयकरण की भावना का परिचय दिया है।

विलियम—पर, मुझे यह नाम पसन्द नहीं है। गुप्ताजी ! 'मधु' के स्थान पर 'माधवी' नाम अधिक जँचेगा।

डा० गुप्ता—क्यों नहीं....क्यों नहीं....मधु और माधवी में क्या अन्तर है ? पूरा नाम 'माधवी' और प्यार का छोटा-सा नाम मधु !

रोजी—मैं कहती हूँ आप लोगों की बुद्धि को हो क्या गया है ? 'माधवी' से तो 'भैरवी' नाम अधिक अच्छा है। लोग नाम से ही डर जायेंगे।

विलियम—(व्यंगपूर्वक)—भैरवी तो तुम्हारा नाम होना चाहिए।

रोजी—क्या कहा ? तुम मुझे भैरवी कहते हो ? मैं भैरवी हूँ ? (गला भर आता है)।

विलियम—मैं तो केवल यह कहना चाहता हूँ कि जो नाम तुमको अपने लिए पसन्द नहीं है वह....।

डा० गुप्ता—सही बात है ऐसा नाम अपनी कुतिया का नहीं रखना चाहिए।

मेरी—डीयर रोजी ! एक नाम मैं सुझाऊँ ? 'आयशा' कैसा रहेगा ?

रोजी – (उदासीनतापूर्वक) – आयशा....क्या स्वीट याने कि मीठा नाम है।

डा० गुप्ता – आयशा से आशा नाम अधिक अच्छा रहेगा। आशा, भाई विलियम और श्रीमती विलियम के जीवन में आशा का संचार करेगी।

विलियम – (मुस्कराते हुए) अच्छा, ऐसी बात है ? तब तो रोजी, यही नाम ठीक रहेगा।

रोजी —मैं जानती हूँ तुम्हारी पसन्द कितनी घटिया होती है। मैं अपनी कुतिया का नाम आशा-वाशा नहीं रखूँगी।

मेरी —जल्दी क्या है मैडम ! कि नाम आज ही रक्खो। ऐसा है कि मैं आज से इस पर विचार करूँगी। तुम भी करना।

सेन बाबू (प्रवेश करते हुए)—अरे भाई ! इतनी सी बात है। टालने से क्या लाभ ? अच्छा काम जल्दी से जल्दी करना चाहिए। किसका नाम रखना है ? कमला या विमला रखलो।

मेरी —सेन साहब ! यह भी कोई बात हुई। ऐसे नाम तो हिन्दुस्तानी लड़कियों के होते हैं।

सेन बाबू —तो क्या हुआ मिस ! पूर्णिमा रखलो, रंजना रखलो..............

डा०गुप्ता--आपने तो कोष ही खोलकर रख दिया सेन बाबू ! श्रीमती रोजी आपकी पसन्द मे अवश्य सहमत होंगी।

रोजी —आप लोग समझते क्यों नहीं ? विलायती कुतिया का नाम............

सेन बाबू—अच्छा कुतिया का नामकरण करना है। मैंने सोचा..........खैर, जाने दीजिये।

विलियम --सेन साहब ! असल में ऐसा है कि मै इसका कोई सांस्कृतिक नाम रखना चाहता हूँ।

सेन बाबू—क्यों नहीं, क्यों नहीं, अवश्य रखिये। (कुछ सोचकर) मैं समझता हूँ..........उर्वशी या मेनका नाम कैसा रहे ?

रोजी—(नाक भौं चढ़ाते हुए)—क्या तमाशा है ? (मुँह बिगाड़कर) उर्वशी........मेनका ओह माई गॉड !

विलियम—रोजी ! तुम्हारी आदत नहीं जायगी। एक भला आदमी अपना सुझाव देता है याने कि सजेस्ट करता है और तुम हो कि...........

रोजी—यह नामकरण का आयोजन तुमने नहीं मैंने किया है। मेरा अधिकार है कि............।

विलियम—देखो, इस कुतिया को विलायत से मैंने मंगाया है। अब तुम्हें कोई नाम पसन्द नहीं हैं तो मैं इसको भी रोजी कहा करूँगा।

रोजी--क्या कहा ? रोजी कहोगे ? इसे याने कि मेरी इज्जत कुतिया के बराबर ही करते हो तुम ?

विलियम—तुम्हारी और तुम्हारे नाम की-दोनों की इज्जत करता हूँ डीयर! रोजी कितना स्वीट याने कि मधुर नाम है। अपना नाम तो मेरा ख्याल है तुमको भी पसन्द होगा।

रोजी—पसन्द हो या न हो, पर मैं बरदाश्त नहीं कर सकती कि कुतिया का और मेरा नाम ....

डा० गुप्ता—श्रीमती जी! वाकई नाम रखना बड़ा कठिन काम है। क्यों न हम एक उपसमिति बना दें इस पर विचार करने के लिए।

रोजी—एक छोटे से काम को तूफेल बना दिया आप लोगों ने। मैं कहती हूँ मारग्रेट नाम बढ़िया........

विलियम (सकोप)—क्या कहा? मारग्रेट? मेरी मां का अपमान? रोजी! एक बार और कहना तो........(आंखें निकालकर देखता रहता है।)

मेरी—माफ करदो विलियम भाई! असल में हम लोगों को जमाने का रुख देखना चाहिये। सब बखेड़े छोड़ो। 'लाइका' नाम रखदें आप तो।

विलियम—(लम्बी साँस लेकर) मुझे [कोई ओब्जेक्शन याने कि एतराज नहीं है। 'लाइका' नाम में कोई बुराई नहीं है। इससे तो सोवियत भारत मित्रता को बल........।

डा० गुप्ता—भाई! नाम ऐसा होना चाहिए कि आप दोनों में मित्रता बढ़े। अन्तरर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के पहले दाम्पत्य-जीवन की सुख शांति को महत्त्व देता हूँ मैं तो।

रोजी—मि० गुप्ता! क्या आप हमारे बीच में मित्रता की कमी पाते हैं? मुझे अफसोस है विलियम की हठधर्मिता के कारण आपको ऐसा फील याने कि महसूस........

विलियम—असल में तुम्हारे त्रियाहठ के कारण इन मित्रों का समय बेकार जा रहा है। रोयली याने कि सचमुच तुमको माफी मांगनी चाहिए इन लोगों से।

रोजी—(झुंझलाकर)--विलियम ! बात को समझा करो तुम। मैं त्रियाहठ करती हूँ?

मेरी—यह त्रिया-हठ नहीं है विलियम भाई ! नारी अपने अस्तित्व को घोषणा कर रही है। तुम उसे स्वीकारनें में क्यों हिचकिचाते हो ? असल में पुरुष जाति के संस्कार.......

सेन बाबू—पुरुषों की क्यों निन्दा करती हो देवो ! विलियम और रोजी की आपसी नोकझोंक तो दाम्पत्य जीवन की सतरंगी झांकी प्रस्तुत करती है। तुम इस आनन्द को क्या जानो ?

डा० गुप्ता–बिल्कुल, यही बात है। हम तो चाहते हैं कि नारी अपने अस्तित्व की घोषणा बराबर करती ही रहे।

रोजी (कुछ झेंपती हुई) क्षमा कीजिए, आपका इतना समय बेकार कर दिया हम लोगों ने।

सेन बाबू--इसी बात पर मैं नया नाम सुझाता हूँ—रोजी-विलियम संयुक्त नाम से बना हुआ रोवो या जीवो में से कोई नाम रख लीजिए आप कुजिया का।

डा० गुप्ता-हां, यह ठीक है। जीवो अच्छा रहेगा। मधुर तो है ही, इसमें नारी जाति को प्राथमिकता मिली है। इससे हमारा सांस्कृतिक दृष्टिकोण भी प्रकट होता है।

रोजी--मुझे स्वीकार है जीवो नाम।

विलियम--मुझे भी स्वीकार है। यह रीयली याने कि सचमुच मेरी धारणा के अनुरूप है।

मेरी—(उदासीनतापूर्वक)—आप सबको स्वीकार है तो ठीक है वरना नाम तो रोवी भी.........

डॉ० गुप्ता—नाम तो दोनों ही अच्छे हैं। बस एक में रोने का भाव निहित है दूसरे में जीने का।

रोजी—अच्छा ! इस ओर तो हमारा ध्यान आपने ही खींचा गुप्ता जी ! हमें जीवो ही पसन्द है अब तो।

विलियम—(मुस्कराते हुए)—पर तुम्हारे नाम में रुलाने और जिलाने के भाव साथ आये हैं डीयर !

सेन बाबू—यही तो बात है--पहले रुलाना याने कि परेशान करना और अन्त में जिलाना याने कि आनन्द से, खुशियों से भर देना ।

डॉ॰ गुप्ता—नारी मात्र का ऐसा ही स्वभाव होता है । इतना अवश्य है कि वह पहला काम परिस्थिति वश करती है जबकि उसकी पसन्द का काम दूसरा ही होता है ।

सेन बाबू—क्यों मेरी जी ! ठीक है न ? आपका तो नामही मेरी याने कि खुशी है ।

मेरी --थैंक यू याने कि शुक्रिया ।

डॉ॰ गुप्ता—नारी के अस्तित्व की तो घोषणा यह है ।

विलियम--इसी बात पर रोजी ! चाय-नाश्ता ले आओ सबके लिए ।

सेन बाबू—और आपकी कुतिया के दर्शन नहीं कराओगे क्या ? क्षमा कीजिए कुतिया के नहीं जीवी के...........

रोजी—(प्रसन्नतापूर्वक)---मैं अभी लाई अपनी जीवी को !

(भीतर चली जाती है ।)

विलियम --मैं जीवी के टीका लगा कर भारतीय ढंग से नामकरण करने के पक्ष में हूं । क्या विचार है आपका ?

सेन बाबू—टीका नहीं चलेगा । उसके सिर पर स्वस्तिक मांडना पड़ेगा ।

डॉ॰ गुप्ता--हां, स्वस्तिक । यही तरीका ठीक है ।

विलियम--देखो मेरी ! अन्दर से थोड़ी हल्दी ले आना । मैं प्लेटें लाता हूं ।

(एक द्वार से मेरी और दूसरे से विलियम भीतर चले जाते हैं ।)

सेन बाबू--गुप्ता जी ! नामकरण की बधाई तो देदें दोनों को ।

डॉ॰ गुप्ता--बाद में देंगे नाश्ते की क्वालिटी के अनुसार । अभी तो बधाई के पात्र आप हैं--नामकरण करने वाले ।

नेपथ्य से रोजी का स्वर--सेन बाबू ! आप लोग अन्दर आ जायं । नाश्ता यहीं लगा दिया गया है ।

सेन बाबू --चलिये, भीतर चलें इसी बात पर ।

[दोनों भीतर चले जाते हैं ।]

[पटाक्षेप]

सत्कार

**** पात्र**

पति

पत्नी

शचीन्द्र

सत्कार

[मध्यम वर्ग के सामान्य परिवार के रहने के एक कमरे का दृश्य। सज्जा बहुत ही साधारण है। पति की आयु लगभग ३५ वर्ष है और पत्नी की २८ वर्ष। वेषभूषा दोनों की बहुत साधारण है। पति तो स्नान के लिए तैयारी कर रहा है। उसने तोलिया लपेट रक्खा है और बनियान पहने हुए। शचीन्द्र लगभग २५ वर्ष का नवयुवक है सुन्दर वेषभूषा में सुसज्जित। पति पत्नी खड़े खड़े ही वार्तालाप करते हैं।]

पत्नी — अरे ! क्या हो गया ऐसा ? क्या नल बन्द हो गया ? तुम्हारे कान पर तो साबुन ही लगा हुआ है। क्या बिना नहाये ही निकल आये बाथ-रूम से ?

पति—अरी ! एक बार में एक बात पूछा कर। उहँ, इन औरतों से बातें बनवा लो। काम के नाम पर............

पत्नी—(खीझ कर)—हर समय काम, काम, काम ! क्या मेरे स्थान पर तुम कर देते हो काम ?

पति—यहाँ घर में बैठी-बैठी न जाने कौन सा जंग जीत लेती हो तुम ! कहीं खेत में या कारखाने में काम करना पड़े तो छठी का दूध याद आजाय । बड़ी आई है काम करने वाली ।

पत्नी—हाँ····हाँ····तुम करते हो काम । यहाँ से जाकर दफ़तर में ऊँघने लगे । मुफ्तखोरी करते-करते बुद्धि सठिया गई है तुम्हारी । घर में तो कोई काम होता ही नहीं जैसे ।

पति—अरे ! जाओ, जाओ । दफतर में कोई काम नहीं होता तो क्या सरकार तुम्हारी रिश्तेदार लगती है कि हर महीने········

पत्नी—सरकार तो अंधी है वरना तुम जैसों को दो कौड़ी में भी नहीं पूछे । इस चपरासी को डाँट दिया । उस क्लर्क की चिकनी-चुपड़ी सुन ली । चार कागजों पर दस्तखत कर दिये । हो गया काम !

पति—और तुमने ! पानी में नमक, मिर्च, हल्दी, जीरा डाल दिया और चार जली-अधजली टिकड़ियां बना दीं । हो गया काम । जानती हो कागजों पर दस्तखत उलटे-सुलटे हो जायें तो सीधे नौ तारों के कमरे में बैठना पड़े । दिमाग का काम है । टिक्कड़ सेंकने में क्या रक्खा है ?

पत्नी—तो दिमाग लगा कर तुम्हीं सेंक लिया करो न टिक्कड़ ।

पति—(सावेश) हां····हां····सेंक लूँगा । मेरे लिए दो रोटी क्या बनाती हो, उसका भी अहसान जताती हो । मेरे लिए मत बनाना आज से खाना (ठहर कर) लो मैं तो नहाता हूँ । कहाँ आ गया सिर खपाने ।

पत्नी—मैं भी तो यही कहती हूँ कि बिना नहाये क्यों चले आये ? तुम्हारा दिमाग तो फालतू है । मुझे तो बैठे नहीं रहना । सारा काम पड़ा है मेरे ।

पति—हां····हां···· फ़ालतू है मेरा दिमाग । मैं क्या यों ही चला आया था बाहर । याद है तुम्हें, कोई दरवाजा पीट रहा था धीरे-धीरे ।

पत्नी--धीरे-धीरे ? क्या कहा धीरे-धीरे ?

पति- हां बाबा धीरे-धीरे। कोई शरीफ आदमी होगा। अब तक तो चला भी गया होगा बेचारा।

पत्नी- धीरे-धीरे तो सत्तू पीटता है दरवाजा। बड़ा शरीफ हुआ ! तुम्हारा भाई ही तो ठहरा।

पति- हाँ, मेरा भाई है न, वह शरीफ क्यों होने लगा। शरीफ तो तुम्हारा भाई है। क्या नाम है उसका ?.........शचीन्द्र। नाम ही कमबख्त का ऐसा है कि भले आदमी को तो याद भी नहीं रहे।

पत्नी (उच्च स्वर से)--बड़े आये भले आदमी। रिश्तेदारों की लिहाज-मुरव्वत में समझो तो याद रहे नाम। बेचारे को सौ बार गाली देते हो दिन भर में।

पति-क्यों नहीं दूंगा गाली। मेरा तो दिमाग खराब हो गया है न ! मेरे और काम भी क्या रह गया है गाली देने के अलावा ?

पत्नी-तो मैं झूठ कहती हूँ ? नहीं देते हो गाली ?

पति—गाली किसी आदमी को दी जाती है। उस कबूतर को क्या गाली दूंगा।

पत्नी—क्या कहा ? कबूतर ? मेरा भाई ? अंधे हो क्या ?

पति—मुझे अन्धा कहती हो ? अपने पतिदेव को ?

पत्नी—अगर अच्छा भला आदमी किसी को कबूतर दिखाई दे तो उसके अंधे होने में क्या सन्देह है ?

पति (क्षुब्ध होकर)-उहं, तो मैं अंधा हूं ? अब समझा। कमबख्त वही आया होगा सवेरे सवेरे। जाने कहां से आ मरता है ?

पत्नी—शचीन्द्र हो ही नहीं सकता। वह क्यों आने लगा इस तरह। क्या वह इतनी भी समझ नहीं रखता कि उसको अपनी बहिन से मिलने कब आना चाहिए।

पति—हाँ, यह बात ठीक कही तुमने। वह तो मेरे पीछे से आयेगा। मेरे सामने आये तो यहाँ उसको भूँजी भांग भी नहीं मिल सकती!

पत्नी—क्या मेरा भाई मंगता है जो तुम्हारे घर पर मांगने चला आता है?

पति—नहीं, वह तो वहिन के लिए सौगात लेकर आता है हमेशा! (व्यग्य-से आवाज तीखी हो जाती है।)

पत्नी—सौगात तुम देते हो न अपनी वहिन को। यह जीभ नहीं हो तो कोई पूछता नहीं तुमको। खैर, मेरे क्या पड़ी है। जैसा करोगे वैसा भरोगे।

[उदास होकर जाने लगती है। जोर से दरवाजे का कुंडी खटखटाने का स्वर]

पति—अरे, दरवाजा खोलकर देख तो लो। मैं ऐसे हाल में वाहर जाऊँ क्या?

पत्नी (जाती जाती वापस लौटती हुई)—कुण्डी जोर से खटखटाई है। कहीं शचीन्द्र ही तो नहीं है? ऐसा करो, तुम नहाने चले जाओ। मैं देखती हूं कौन है। शचीन्द्र हो सकता है।

पति–मैंने तो पहले कह दिया था। अवश्य वही है। तुम चाहती हो कि मैं तो बाथ-रूम में बैठा रहूँ और तुम अपने लाडले भाई को········

पत्नी–मैं क्या उसको दे दूंगी कुछ तुम्हारे घर का? (थोड़ी हँसने की चेष्टा करते हुए) सवेरे-सवेरे ऐसे नाराज मत हुआ करो जी! शचीन्द्र ही आया हो तो तुम्हारा इस तरह चढ़ा हुआ मुँह क्या अच्छा लगेगा? वह तो बहुत ही समझदार है। इसलिए यहाँ की बात कभी वहाँ जाकर नहीं कहता वरना पिताजी············

पति (मुँह वनाकर)–वरना पिताजी····पिताजी क्या तोप लगा देते मेरे? शूली पर लटकवा देते मुझको?

पत्नी (चिरौरी करते हुए)–मनमानी बातें सोचकर क्यों जी जलाते हो जी? तुम क्या पिताजी के दुश्मन हो? वे कितना प्यार करते हैं

तुमको। एक बार उन्होंने तुम्हारे विषय में भाई द्वारा कुछ कह देने पर दो दिन तक भोजन नहीं किया था और....अच्छा जाने दो खुश हो जाओ प्लीज !

पति (वैसे ही चिढ़े हुए मन से)-तुम्हें यह भी याद होगा कि उनके दुर्व्यवहार से दुःखी होकर मेरे भाई ने दो दिन तक भोजन नहीं किया था।

पत्नी—अब जाने भी दो सब बातों को। नहा लो तुम जल्दी। फिर बाजार भी तो जाना होगा।

पति—बाजार मैं नहीं जाऊँगा। अपने भाई के स्वागत-सत्कार में तुम दस का पत्ता ठण्डा कर दोगी अभी।

पत्नी—नहीं जी, दस बस की झूठी बात। बस एक मिठाई ले आना और थोड़ा सा नमकीन। डबल रोटी भी ताजा लानी पड़ेगी। वह कल वाली तो सूखी-सूखी सी हो गई। सब्जी तीन चार कोई भी ले आना और ४-५ किलो अच्छे आम।

पति – देवी जी ! तुम्हारी फरमाइश को पूरा करने पर तो बीस रुपये ठण्डे होंगे। तुम घर में बैठी-बैठी बातें बना देती हो। तुम्हें याद है पांच किलो आम ही पन्दरह रुपये के होंगे।

पत्नी – अरे बाप रे ! इतने महँगे हैं आम ? तो फिर छोड़ो आम की बात। २ किलो अँगूर ले आना, बस।

पति – अरी भागवान ! दो किलो अँगूर तो पाँच किलो आमों से भी महँगे हैं। ऐसा करो, एक किलो आम से काम चला लेना।

पत्नी – ऐसा कैसे हो सकता है ? एक किलो आम तो हमारे यहां चखने भर में खतम हो जाते थे।

पति – तो यहाँ क्या आम का बगीचा लगा है। यहां भी चखना भर हो जायगा। तुम्हारे भैया से कह देना कि भर पेट आम खाने के लिए किसी आम के बगीचे में चले जायें।

पत्नी – कैसी बात करते हो जी। यह भी कोई कहने की बात है।

पति – तो ऐसा करना तुम दोनों भाई-बहिन खा लेना आम। मैं आज उपवास कर लेता हूँ।

पत्नी – नहीं जी; ऐसा नहीं करते। भैया और आप साथ बैठ कर भोजन करना। ऐसे अवसर कितने दिनों बाद आते हैं। (मुस्कराते हुए) जाओ, जल्दी से नहा लो।

पति – नहाने तो जा रहा हूँ; पर तुम सोच लो। तुम्हारी आदत बहुत खराब है। अधिक खर्चा नहीं होना चाहिए महीने का अन्तिम सप्ताह चल रहा है।

पत्नी – अब ऐसे समय पर तो खर्चा हो ही जाता है। कहीं और कटौती कर लेंगे। मैं चार महीने तक नई साडी नहीं खरीदूँगी। फटी पुरानी पहन लूँगी घर में।

पति – बडी पहन लोगी फटी पुरानी। हर बार घर का बजट तुम्हीं बिगाड़ती हो।

पत्नी – अब नहीं बिगाड़ूँगी। इस बार क्षमा कर दो।

[पति सन्तुष्ट होकर नहाने जाने को उद्यत होता है। धीरे-धीरे कुंडी खटखटाने का स्वर]

पत्नी – अरे सुन रहे हो। धीरे-धीरे कुंडी बजाई जा रही है।

पति – हां, हाँ, मैंने भी सुना। सत्तू ही हो सकता है। जाओ, खोलो तो कुंडी।

पत्नी – मैं पहले ही कहती थी। वही होगा। तुम्हारा भाई है तुम्हीं जाकर खोलो कुंडी। मुझे तो अभी इतना सारा काम करना है।

पति – अरे, पर कुंडी तो खोल दो। इतना सारा काम करना है तो क्या एक काम अधिक कर देने में तुम्हारे हाथ घिस जायेंगे ?

पत्नी – इसमें हाथ घिसने की क्या बात है ? मैं अपना काम कर रही हूँ। तुम अपने भाई का स्वागत सत्कार करो।

पति – तुम कुंडी खोल कर अन्दर बिठा दो। मैं नहा कर अभी आया। फिर बाजार जाना है।

पत्नी – बाजार क्यों जाना है। साढ़े नौ बजने वाले हैं। दफ्तर नहीं जाओगे ?

पति-- दफ्तर थोड़ी देर से चला जाऊँगा या आज आधे दिन की छुट्टी ले लूँगा।

पत्नी (मुँह बना कर) – छुट्टी ले लूँगा। ले लो। कौन रोकता है तुम्हें ? करो अपने लाड़ले भाई का स्वागत सत्कार। (चेहरा तमतमा जाता है।)

पति – अरे, मेरा भाई है तो तुम्हारा क्या कुछ भी नहीं है वह। यों नाराज मत होओ रानी ! जरा हँस दो इसी बात पर [ठहर कर] और देखो समय अधिक ही हो गया है। इसलिए बाजार जाना नहीं हो सकेगा। तुम हलुवा बना लो प्योर घी का और पूरी।

पत्नी – हूँ, हलवा, पूरी और कुछ ?

पति – बस आलू के कोफ्ते बना लो। मैं नुक्कड़ से दही ले आऊँगा। उसमें केले काट कर डाल देना। उधर से रसगुल्ले ले आऊँगा एक किलो।

पत्नी–हां, जरूर ले आना। रसगुल्लों के बिना पेट नहीं भरेगा तुम्हारे लाडले भाई का। (कुछ सोचकर) यह तो जानते हो न महीने का अन्तिम सप्ताह चल रहा है और इस स्वागत-क्रिया में कम से कम बीस रुपये खर्च हो जायेंगे।

पति – हूँ........तो फिर एक बात है। मैं किलो भर खोआ ले आता हूँ। तुम गाजर का हलवा बना लेना। उसमें थोड़े मेवे डाल देना।

पत्नी – पर इसमें तो रसगुल्लों से भी ज्यादा खर्चा आयेगा। ऐसा नहीं कर सकते कि पाव भर रसगुल्ले में ही काम निकल जाय ?

पति – पाव भर में क्या होगा ? हम लोग बचपन में नाश्ते में ही पाव-पाव भर रसगुल्ले उड़ा जाया करते थे।

पत्नी – तब तो ठीक है। पाव भर बहुत हैं। तुम दोनों खा लेना। मुझे नहीं खाना रसगुल्ले। मुझे तो अपना घर देखना है। और कोई चटखोरी होती तो अब तक घर के बरतन भी बेच देती।

पति – इस बारे में तुम्हारा कोई जवाब हो नहीं। मां भी कहा करती है कि बहू बहुत संजीदगी-पसन्द है। उसे किसी भी चीज के खाने-पीने का शौक नहीं है।

पत्नी – (व्यंग्य पूर्वक)—कहती है माँ। तुम्हें पता थोड़े ही है कि वे मेरी कितनी बुराइयाँ करती हैं।

पति – अरे छोड़ो इन बातों को। मुझे अच्छी तरह याद--एक बार किसी ने तुम्हारे विषय में कुछ कह दिया था तो माँ ने उसके लत्ते ले लिये थे।

पत्नी – मैं भी वह दिन नहीं भूल सकती जब उन्होंने तुम्हारी बहिन के लिए तो सो रुपये की साड़ी खरीदी थी; पर मुझे एक पैंतालीस रुपये की साड़ी दिलवाने के लिए भी नाक भौं सिकोड ली थी। उसी दिन से मैंने तो बात गाँठ बाँध ली कि कभी कुछ कहना ही नहीं।

पति – अरे; तुम भी क्या बात लेकर बैठ गयी रानी ! लो हँसो एक बार प्लीज ! जाओ दरवाजा खोल दो और इतनी देर में मैं नहा आता हूं।

पत्नी – नहीं जी, मैं दरवाजा नहीं खोलूंगी। आप ही खोलिए।

पति-मुझे नहाने में देरी हो जायगी भाई ! जरा सोचो तो। जाओ प्लीज !

पत्नी – भई ! तुम मुझे परेशान मत किया करो।

पति – अब मैं हूं तब तक तो तुमको परेशान होना ही पड़ेगा। मेरे पीछे तुम्हारे मन में आये वैसे रहना तुम।

पत्नी – कैसी बातें करते हो जी ? कुछ तो सोचा करो। मुझे क्या तुम बुरे लगते हो।

पति – तुम खुश क्यों नहीं रहती तो ?

पत्नी मैं तो खुश ही हूं। तुमने दरवाजा खोलने के लिए कहा है। अभी खोल देती हूं।

[जाती है कुछ सोचता-सोचता पति नहाने जाने लगता है।]

पत्नी (वापस लौटकर)–अजी, सुनते हो ? दरवाजे पर तो कोई भी नहीं है। पड़ोसन ने कहा है कि एक लड़का-सा था। बहुत देर तक खड़ा रहकर चला गया।

पति – (लौटकर)—चला गया ? किधर चला गया ? पूछा नहीं तुमने ? सत्तू होगा। कितनी पत्थर-दिल हो तुम ?

पत्नी – नहीं, वह सत्तू नहीं हो सकता। शचीन्द्र ही होगा। तुमने मेरे भाई का कितना अपमान कर दिया सोचो तो जरा।

पति – (सावेश)--भाई, भाई·········कैसे अपमान कर दिया उसका ! और, अपमान हो ही गया तो वह इस योग्य था भी।

पत्नी–(सावेश)–वह सत्तू ही था इस योग्य। अच्छा हुआ चला गया जो। बड़े लोगों ने सच कहा है–जो तोही कांटा बुवै, ताहि बोउ तू शूल।

पति – अजी, पंडिता जी ! 'शूल' नहीं 'फूल' है। तुमने तो कवि की कविता का एकदम कचूमर ही निकाल दिया। यही बुद्धि लेकर अकड़ती हो मुझसे ! और, वह तुम्हारा भाई, बुद्धि में तुम से कुछ सवाया ही है।

पत्नी – देखो जी, कान खोल कर सुन लो। खबरदार जो मेरे भाई के लिए कुछ भी कहा तो। एक तो सबेरे-सबेरे उसको अपमानित कर दिया और फिर·············।

पति – मैं भी कह देता हूं, कान खोलकर सुन लो। सत्तू का अपमान करने का तुमको कोई अधिकार नहीं है। मेरे भाई के लिए तुमसे दरवाजा नहीं खोला गया तो तुम मेरे लिए ही············।

पत्नी – जाओ, जाओ। मेरे भाई का अपमान करके मुझ पर ही रोब गांठ रहे हो। खा लो होटल में खाना। मुझसे नहीं होता काम।

पति – हाँ, हाँ, खा लूंगा होटल में खाना। जिस घर में मेरे भाई का अपमान होता हो उसमें मैं नहीं रह सकता। बुला लो अपने भाई को और मौज करो यहां। मैं चला जाता हूं यहां से।

[द्वार पर कुण्डी खटखटाने का स्वर]

पत्नी – लो अब फिर आ गया तुम्हारा भाई। करो उसका स्वागत-सत्कार। मैं आज ही चली जाऊँगी इस घर से।

पति – अरे, तुम्हारा भाई ही आया होगा। दस बार दुत्कार दो तब भी वह पीछा नहीं छोड़ता।

पत्नी--मेरा भाई ऐसे नहीं आ सकता। सत्तू ही होगा। कुछ माँगने आया होगा। जब तक मिल नहीं जायगा वह द्वार से टलने का नाम न लेगा।

पति--जाकर देख लो न, तुम्हारा भाई ही होगा जरूर।

पत्नी--तुम्हीं जाकर देखो न, सत्तू ही होगा।

पति—मैं नहीं खोलूँगा दरवाजा। यहां तो महीने का अन्त चल रहा है और वह कमवख्त.........

पत्नी--मैं भी नहीं खोलूँगी दरवाजा। मैं जा रही हूँ भीतर।

[चली जाती है।]

पति--मैं भी नहाने जा रहा हूँ।

[चला जाता है।]

नेपथ्य से पति का स्वर—अरे आओ भाई शचीन्द्र !

नेपथ्य से शचीन्द्र का स्वर--आओ भैया !

नेपथ्य से पत्नी का स्वर--अरे, मैं तो दरवाजा पीट-पीट कर थक गया और अब दरवाजा खोलने आप दोनों एक साथ आये हैं।

नेपथ्य से पत्नी का स्वर--भैया ! मैं उधर रसोई में थी। आवाज सुनते ही एक दम भागी-भागी आई।

नेपथ्य से पति का स्वर--अरे भाई ! मैं बाथरूम में था। आवाज सुनते ही बिना नहाये ही दौड़ते-दौड़ते आना पड़ा।

नेपथ्य से शचीन्द्र का स्वर—अच्छा, अच्छा, कोई बात नहीं। दीदी तुम तो रसोई में जाओ मुझे बड़े जोरों से भूख लग रही है। और जीजाजी आप नहा कर आइये।

नेपथ्य से पति का स्वर—मैं अभी नहाता हूँ फटाफट।

नेपथ्य से पत्नी का स्वर—और मैं अभी भोजन तैयार करती हूँ।

[हँसते-हँसते शचीन्द्र का मञ्च पर प्रवेश]

[पटाक्षेप]

बड़ा अफसर

** पात्र

राजीव

पं० रामदीन—राजीव के पिता

अशोक—राजीव का मित्र

दीनदयाल—पड़ोस के वृद्ध सज्जन

राधे—नौकर

बड़ा अफ़सर

[मध्यम वर्गीय परिवार के रहने योग्य एक कमरे का दृश्य । सामान्य सज्जा । राजीव व अन्य पात्र खड़े-खड़े ही बात करते हैं । राजीव लगभग २५ वर्ष का नवयुवक है । राधे की अवस्था लगभग १८ वर्ष है । समय प्रातः काल ।]

राजीव—कौन आया है ? नाम पूछा ?

राधे—नहीं सर ! वे कई बार अपने यहाँ आ चुके हैं । मैंने उन्हें बैठक में —सौरी सर ! ड्राइंग-रूम में बिठा दिया है ।

राजीव—अपने यहाँ तो कई आ चुके होंगे । क्या सभी को इस तरह ड्राइंग-रूम में बिठा देगा ? यह बात ठीक नहीं है ।

राधे—ऐसे कैसे बिठा दूंगा सर ! अब मैं इस घर का नोकर रद्धू थोड़े ही हूँ । राजीव साहब का अर्दली हूं । मुझे भी बुद्धि है थोड़ी ।

राजीव—शाबास ! अब तुम अपने महत्त्व को समझ गये हो । इसी तरह मुझे भी तो यह सोचना है कि किससे मिलूँ और किससे नहीं मिलूँ ?

राधे—यह तो सोचना ही पड़ेगा । आप कोई छोटे-मोटे अफसर हैं क्या ?

राजीव—हाँ भाई ! अपने स्तर के अनुसार रहना चाहिए । पहले तो अपने यहां वह दूध वाले का छोकरा भी आकर दो घण्टे तक जम जाया करता था ।

राधे—वह बड़ा पाजी है सर ! आज भी आया था । मैंने कह दिया कि साहब बाथरूम में गये हुए हैं । हक्का-बक्का रह गया वह तो ।

राजीव—हक्का-बक्का ! क्यों रह गया हक्का-बक्का ?

राधे—सर ! उसे पता ही नहीं था कि........।

राजीव—क्या पता नहीं था उसे ?

राधे (हँसकर)—यही कि बाथरूम क्यों गये हैं ? तरस आता है उसकी बुद्धि पर ।

राजीव—हाँ, बेचारा ।

राधे—उसने पूछा था कि क्या राजी भैया नहीं पढ़ायेंगे ?

राजीव—फिर तुमने क्या कहा ?

राधे—मैंने कह दिया सर ! समझा दिया उसे कि अब राजी भैया बड़े अफसर हो गये हैं । इसलिए आज से लिखाने-पढ़ाने की छुट्टी ।

राजीव—फिर ?

राधे—वह मुँह लटका कर चला गया सर !

राजीव—ऊँह, बेचारा !

[दरवाजे की कुण्डी खटखटाने का स्वर सुनाई पड़ता है ।]

राजीव—देखना तो, यह पिछवाड़े की ओर से कौन आ गया ? कमबख्त चैन नहीं लेने देते । इतनी—सी बात भी नहीं समझते कि बड़े अफसर के समय की कुछ कीमत होती है ।

राधे—हाँ, सही बात है सर ! सोचना चाहिए इनको।

राजीव—राधे ! ये क्या; इनके पुरखे तक नहीं सोच सकते यह बात। ये हिन्दुस्तानी लोग बहुत ही सिरफिरे और अव्वल दर्जे के नकटे होते हैं।

राधे (कुछ सोचकर)—पर, सर ! मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि हिन्दुस्तानी तो मैं भी हूँ····आप भी·········।

राजीव—अरे राधे ! तू भी नासमझी की बातें करता है भाई ! अपन लोग हिन्दुस्तानी कैसे हो सकते हैं ? मैं बड़ा अफसर हूँ। तू उसका अर्दली है।

राधे -तो क्या हम·········?

राजीव—मैं समझ गया तुम्हारी बात। देखो तुम भी मेरी बात समझने की कोशीश करो। तुम मेरे अर्दली हो न ?

राधे--यस सर !

राजीव—तो इस बात को समझ लो कि अफसर का देश उसका दफतर होता है, उसकी जाति अफसर होती है और उसका धर्म अफसरी।

राधे (आँखें मूँद कर सोचता हुआ)–हां, सर ! समझ गया मैं····अफसर का देश, अफसर की जाति और अफसर का धर्म क्या होता है। इस बात को मैं पूरी तरह से समझ गया। पर·········

राजीव—हां, हां, बोलो रुक क्यों गये ?

राधे—सर ! मैं····मैं····किस देश का हूँ ? और····और····मेरी जाति और धर्म ?

राजीव (हँसकर)—ओहो····अरे समझ। (थोड़े लहजे के साथ) तू उस देश का वासी है जिस देश में अफसर रहते हैं।

राधे (हँसकर)—समझ गया सर ! समझ गया। (वैसे ही स्वर में) मैं उस देश का वासी हूँ जिस देश में अफसर रहते हैं।

राजीव—और तेरी जाति वही है जो अफसर की होती है।

राधे—हां, सर ! मैं अफसर की जाति का हूँ।

[फिर कुण्डी खटखटाने का स्वर]

राजीव—अरे ! जा भाई ! यह तो पीछे ही पड़ गया। (धीमे स्वर में) देख, कोई इधर-उधर का होगा। कोशीश तो टरकाने की करना उसे।

राधे—समझ गया सर ! समझ गया। कह दूंगा बड़े साहब अभी बहुत व्यस्त है उनको बिल्कुल समय नहीं है। हां ऽ ऽ ऽ

[चला जाता है। दरवाजा खुलने का स्वर]

नेपथ्य से उच्च स्वर—अरे राजी बेटे ! सुनते हो ?

राजीव—आया चाचाजी ! अरे आप हैं ?

नेपथ्य से उच्च स्वर—अरे बेटा ! कितनी बार दरवाजा पीटना पड़ा।

[स्वर पास आता जाता है। अन्त में दीनदयाल का प्रवेश]

दीनदयाल—बेटा ! मैं तो तुझे बधाई देने आया था। कहते हैं तू बड़ा अफसर हो गया ?

राजीव हां, चाचाजी ! आपके आशीर्वाद से और भी बड़ा अफसर बन जाऊंगा।

दीनदयाल—जानता हूँ भाई ! भगवान् के यहाँ देर है अन्धेर नहीं है। इतनी पढ़ाई की है तो अफसर होगा ही। मैं तो पहले ही कहता था किशन से कि बेटे ! तुझे साढ़े तीन सौ रुपये तनख्वाह मिलती है तो घमण्ड मत किया कर। तेरे दादा राजीव को किसी दिन पांच सौ मिलेंगे। झूठ कहता था मैं ?

राजीव—नहीं चाचाजी ! आपके आशीर्वाद ने ही मुझे इस योग्य बनाया है।

दीनदयाल—क्यों बेटा ! पांच-छह सौ से कम तनख्वाह थोड़े ही मिलती होगी तुझे ?

राजीव—चाचाजी ! अभी तो आठ सौ मिलते हैं। यों मुझे वे एक हजार दे रहे थे, पर मैंने कहा कि अभी नया-नया आदमी हूँ। आठ सौ

बहुत हैं। फिर मेरे काम को देखकर बारह सौ भी देंगे तो सहर्ष ले लूँगा।

दीनदयाल—बहुत अच्छा किया तूने, बहुत अच्छा। बेटे! अब तू बड़ा आदमी हो गया है। अपने भाई किशन को मत भूल जाना रे!

राजीव—चाचाजी! आपने भी कैसी बात कहीं! किशन को मैं कैसे भूलूँगा? कोई समय आने दो। एक हजार की अफसरी उसे भी नहीं दिला दी तो राजीव का नाम बदल देना।

दीनदयाल—जीते रहो बेटे! जीते रहो। मैं चलता हूं। तुम्हारी चाची को भी यह समाचार सुनाता हूँ।

राजीव—ठहरो चाचाजी! चाय तो........अरे राधे!........

दीनदयाल—अरे बेटे! चाय-वाय कुछ नहीं। मैं तो किसी दिन लड्डू खाऊँगा आकर। (जाते-जाते) आज कितनी प्रसन्न होगी तेरी चाची? ऐसा करना बेटा! तू ही उधर आ जाना। आज अपनी चाची के हाथ का खाना खा भाई! कितना बड़ा अफसर हो गया है तू!

[चला जाता है।]

राजीव—हूँ... चला गया। (मुँह बना कर) खाना चाची के हाथ का! कुछ पैसे मांगने का इरादा होगा। मैं सब समझता हूँ, ऐसी चालों को। राधे ऽ ऽ........

राधे (आता हुआ)—आया सर!

राजीव—मैंने कहा था कि टरका देना ऐसे-वैसे किसी आदमी को। फिर भी तू ले आया उस चाचा को।

राधे—सर! उन्होंने पूछा ही नहीं मुझ से तो। वे सीधे चले आये। फिर उनकी आवाज सुन कर आप भी तो बोल गये।

राजीव (झुंझलाकर)—तो मैं क्या चुप्पी साध लेता। तुझे चाहिए था कि पहले ही जवाब दे देता।

राधे--सोरी सर ! आगे याद रक्खूंगा। (धीरे से, संकोच पूर्वक) सर ! एक वात कहूं ?

राजीव—कहो, जरूर कहो। क्या बात है ऐसी ?

राधे--सर ! आपको आठ सो रुपये मिलते हैं न ? अफसर वनने की खुशी के समय कुछ मेरी तनखवाह भी बढ़ा दें सर !

राजीव—राधे ! तू अकेला आदमी है। ज्यादा पैसे लेकर क्या करेगा ? अब तू मेरा अर्दली हो गया। तेरा भी तो पद बढ़ गया ?

राधे—फिर भी सर ! मैं अफसर की जाति का हूँ। पन्दरह रुपये तो बहुत ही कम होते हैं।

राजीव—भाई ! तू समझता नहीं। मैं आठ सो का अफसर हूँ; पर आठ सो लूंगा थोड़े ही। मैं तो केवल दो सो रुपये लेने की सोच रहा हूँ। तुझे भी इसी तरह कम तनखवाह लेनी चाहिए। हा, और तेरी बीबी के आते ही तनखवाह दूनी कर दूंगा।

राधे—(मुंह लटका कर) अच्छा सर !

[नेपथ्य से खांसने का स्वर]

राधे—सर ! वे ड्राइंग रूम में बैठे हैं।

राजीव—अच्छा ! (थोड़ी देर सोचकर) थोड़ी देर और बैठा रहने दो कमबख्त को। आगे कभी आने का नाम नहीं लेगा मनहूस। (मुंह बना कर) चले आते हैं न जाने कहां-कहां से।

राधे—सर ! दरवाजा बन्द कर दूं। नहीं तो कोई और आ जायगा अभी।

राजीव—दरवाजा तुमने खुला ही छोड़ रक्खा है ? (सावेश) मैं कहता हूँ अभी बन्द कर और नेम-प्लेट में 'आउट' कर दे।

[अशोक का प्रवेश]

अशोक (आते-आते)—'आउट' करो या कुछ भी करो दोस्त ! जिनको आना होगा वे तो सूंघ कर आ जायेंगे। यार लोगों को धोखा नहीं दे सकते तुम।
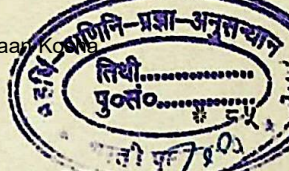
राजीव—आओ अशोक ! आओ । भाई ! क्या बताऊं ? दफ्तर का ढेर सारा काम पडा हुआ है । कोई काम नहीं करता । मुसीबत हम अफसर लोगों की हो जाती है ।

अशोक (साश्चर्य)—अफसर ? कैसे अफसर ? मैंने तो सुना था कि तुम बैंक में बाबू हो गये हो ?

राजीव (घबराकर)—हां....हां ...बैंक में ही ...(राधे को देख कर उसे डाँटते हुए) अरे राधे ! तू....तू यहां क्यों खड़ा है ? अशोक साहब के लिए कुछ नाश्ता-वाश्ता ला भाई । इनका मुंह मीठा कर । बराबर के अफसर हैं । कुछ तो सोचा कर । जा जल्दी कर ।

[राधे बाहर चला जाता है ।]

अशोक--(धीरे से) वाह बेटे ! तो तू राधे पर झाड़ रहा है अफसरी का रौब ! तभी मैं कहूँ ! (जोर से हँसता है)

राजीव--(झेंपता हुआ)--अरे यार ! धीरे बोल भाई । एक कोई कमवख्त ड्राइंग रूम में बैठा है मिलने के लिए । उसके सामने तो मेरी कलई मत खोल ।

अशोक—(मुस्कराता हुआ)–सोरी सर ! हां तो राजीव साहब ! बात यह है भाई, हाँ आँSSS क्या कह रहा था मैं ?

राजीव (जोर से) वही अशोक साहब ! दफ्तर की बात ।

अशोक· हाँ, तो राजीव साहब ! आप तो फंस गये इस दफ्तर में । इतना काम है, इतना काम है कि पूछो ही मत । यह काम मैं तो कर चुका हूँ । अब तरक्की पर चला गया तो क्या हुआ । मुझे सब याद है कि यहाँ कितना काम है ?

राजीव-हाँ भाई, सब लोग दांतों तले अंगुली दबा कर देखते रह जाते हैं मेरे काम को ।

अशोक-बस लोगों को क्या चाहिए—काम जल्दी निपटाया जाये और उनसे मधुर व्यवहार किया जाय ।

राजीव--हाँ, और क्या ?

अशोक--तो भाई, रहने दे तेरे नाश्ते को । अपन अब चल दिये । आज

तो पहली तारीख है याने कि पे-डे। और गुरु! आज के तो तुम सबसे बड़े अफसर हो।

राजीव--अच्छा, तो तुम इसलिए आये हो। (थोड़े उच्च स्वर से) तो भाई। तुम्हारा काम तो सबसे पहले करना पड़ेगा। आ जाना दफ्तर में।

अशोक--आना ही पड़ेगा। पहली तारीख के अफसर जो हो। सबसे पहले अपना काम होना चाहिए। (धीमे स्वर में) वरना देख लेना सारी पोल खोल दूंगा तुम्हारी अफसरी की।

राजीव--(उच्च स्वर से)-अरे भाई! तुम्हारा काम नहीं होगा क्या, सबसे पहले होगा।

अशोक--तो चल दिये भाई! दफ्तर में ही भेंट होगी। (चला जाता है।)

राजीव-- (कुछ देर तक सोचता हुआ)--हूँ, काउण्टर पर मैं ही रहूँगा। बिल को खत्ते में नहीं डाल दिया तो मेरा नाम राजीव नहीं। (मुँह बना कर) चला है रौब डालने।

[कमरे से बाहर चला जाता है। दूसरे द्वार से पं० रामदीन का प्रवेश]

रामदीन--अभी तो यहीं था। किधर चला गया राजी? (कुछ सोचते हुए) क्या हो गया है इन आजकल के छोकरों को? एक आवारा छोकरे को नौकर रख रक्खा है। क्या नाम है उसका? हाँ-रद्धू। (उच्च स्वर से) अरे रद्धू!

राधे--(प्रवेश करता हुआ)-हाँ साहब! देखिये सबसे पहले तो यह बताइये कि आप यहां बिना पूछे कैसे आ गये? साहब ने कहा था कि.........

रामदीन--(आवेश में)—बड़ा साहब का बच्चा आया है। साहब....साहब.... क्या कहा है तेरे साहब ने? कान पकड़ कर बाहर निकाल दूंगा घर के। देख लेना हाँ आंSSS।

राधे--ठीक तरह से बोलिये साहब? बड़े आये निकालने वाले। मैं राजीव साहब का अर्दली हूँ। आपको पता नहीं होगा कि राजीव साहब कितने बड़े अफसर हो गये? आपको सीखना चाहिए कि एक अफसर के अर्दली से कैसे बात करनी चाहिए। मैं आपको बुजुर्ग देखकर........।

रामदीन—(उच्च स्वर में)--अबे, अर्दली के बच्चे ! मैं बुजुर्ग दिखाई देता हूँ तुझे ? अभी तो साठ का भी नहीं हुआ मैं । आँखें फाड़ कर देख तो सही ।

राधे--अच्छा साहब ! आप बुजुर्ग नहीं हैं ! नौजवान हैं । जाइये 'ड्राइङ्ग-रूम' में बैठिये । बिना पूछे आपको अन्दर नहीं आना चाहिए ।

रामदीन--(मुँह बनाते हुए)--नहीं आना चाहिए अन्दर....जानता तो है कौन हूँ मैं ? राजो का बाप हूँ मैं, वह मेरा बेटा है ।

राधे--मैं क्या जानूँ साहब ! उनको बेटा कहने वाले तो दिन में दस आते हैं । एक साहब तो अभी अभी गये हैं । वे भी बेटा कह रहे थे और एक बेटा कहने वाले बुजुर्ग उनसे पहले आये थे । बड़े अफसर हैं । न जाने कितनों से रिश्तेदारी है उनकी ?

रामदीन (कुछ सोचते हुए)—हूँ..........

राधे—साहब ! मुझे तो बेटा कहने वाले एक ही थे दुनिया में और वे भी गुजर गये ।

नेपथ्य से राजीव का स्वर-अरे राधे ? कहाँ मर गया ? मेरा दफ्तर का समय हो गया ।

राधे --आया सर ?

नेपथ्य से स्वर-आज पहली तारीख है भाई ? कितने लोगों को तनख्वाह बांटनी है मुझे ?सारी जिम्मेदारी बड़े अफसर की होती है । सवेरे से ही न जाने कहाँ के कमबख्त आ मरते हैं । मैं कहता हूं तू कर क्या रहा है वहाँ ?

(राजीव का प्रवेश)

राजीव (घबराकर)—अरे पिताजी, आप ! कब आये ?

रामदीन (सावेश)-कब आये ?अब पूछ रहे हो ? आठ बजे से बैठा हूँ बैठक में । यह तुम्हारा अर्दली कहता था कि बाथरूम गये हैं । अरे, बाथरूम में क्या घण्टे भर से भगवद्गीता का पाठ कर रहा था ?

राजीव —पिताजी ? दर असल दफ्तर का काम कर रहा था । इसलिए.... इसलिए मैंने इससे कह दिया था कि.........

रामदीन--हाँ इसलिए कह दिया था कि तुम्हारे बाप को भी अन्दर नहीं आने दे। खूब पढ़े बेटे ! तुम्हीं करोगे अपने कुल का उद्धार।

राजीव (गिड़गिड़ाता हुआ)-क्षमा कीजिए पिताजी ! आप नहा धोकर आराम करें। मैं दफ्तर से जल्दी लौट आऊंगा। आज पहली तारीख है न ! जिले भर के राजकर्मचारियों को तनख्वाह बाँटनी है। (राधे से) अरे गधे। खड़ा खड़ा क्या ताक रहा है। जा, हाने के लिए गरम पानी रख दे।

[राधे चला जाता है।]

रामदीन – तुम अफसरी करो अपनी ! मैं जा रहा हूं। [जाने लगता है।]

राजीव-- पिताजी !····पिताजी ?··· ठहरिये तो आप। मुझे क्षमा कर दीजिए। (हाथ जोड़कर रामदीन के सामने खड़ा हो जाता है।)

रामदीन अरे; पहली तारीख के अफसर ? मैं भी जानता हूँ कि बैंक में काउण्टर पर काम करने वाला कितना बड़ा अफसर होता है। अभी तो नौकरी लगे तीन दिन नहीं हुए और चला है अफसरी करने। जरा जमीन पर पैर रखकर चला कर भाई !

राजीव--पिताजी ? क्षमा कर दीजिये मुझे।

रामदीन – क्षमा तो मुझे कर बेटे ! मैंने तेरी अफसरी का खयाल नहीं किया। (उदासीन होकर) सोचा था बेटा बैंक में काम करता है। पेंशन की रकम जाते ही मिल जायेगी, पर बेटा औरों से भी बड़ा अफसर निकला······· औरों से भी बड़ा।

[चले जाते हैं। राजीव उदास होकर ताकता रहता है।]

[पटाक्षेप]

३१०-३१५, गेहूं दड़ा ३०६-३०८ चक्की आटा ४३, सेलर मिल आटा ३०२-३१०, लोटस ४२, मैदा ३२२-३३०, चावल बासमती लालकिला १८७५, चावल बासमती सुपर ६५०-१४००, चावल परमल ३३५-४७०, चना ७४०-७७५, काबुली चना ७७०-८२०, मटर ५६०-६००, बाजरा १५०-२२०, ज्वार १७०-२५०, मक्की २२२-२३५, जौ २००-२१०

दलहन और दालें

उड़द ६००-६५०, दाल उड़द ६७५-८६०, दाल उड़द धोया ७५०-९२५, मूंग ७२५—८०० दाल मूंग -७७५-९५०, दाल मूंग धोया ८७५-१०२५, मसूर ६६०-७७० दाल मसूर ७४०-८२५, मोठ ४७०-४८५, अरहर ४७०-५२०, राजमा चित्रा १४००-१६००, दाल अरहर ७००-८२५, दाल चना ८६०-९००, बेसन ६९५, हाथी छाप ६९२।

(प्र.कि.) ६३५०, चांदी सिक्का ६५००, सोना स्टैण्डर्ड ३१७०, स्वर्णाभूषण (प्र. ...

कन्हैयालाल दामोदर ...
कम्पनी
राजादरवाजा, ...
फोन-६२८६५

चांदी सिल (प्र.कि.) ... (प्र.कि.), ६३५५ चांदी ... ६९२०, सोना स्टैण्डर्ड ... ३१३५, स्वर्णाभूषण (प्र. ...

दिल्ली

दिल्ली, २१ जनवरी। स्थानीय ... आज भाव इस प्रकार रहे।

सोना प्रति १० ग्राम बिठूर दिल्ली ३११५-३१२५, स्टैण्डर्ड सोना ३२८० स्वर्ण आभूषण २२ कैरेट ३१७० गिन्नी असली २५२५-२५५०, चांदी गट्टी ६४३७, चांदी कच्ची ६५५७, सिक्का ६९००, चांदी ६५१७

मांग नगण्य रहनेसे सरसों और मूंगफली तेलमें गिरावट

दिल्ली, २१ जनवरी। पूर्वी भारत तथा उ।रके पहाड़ी क्षेत्रोंसे मांग न आनेसे तेल सरसो ५ रु. और घटकर २५० से २९५ रु. प. टीनके निम्न स्तरपर आ गया। तेल मूंगफली मिल डिलीवरीमें भी १० रु. की हानि हुयी जबकि अखा) तेलोंके भाव साबुन वालोंकी मांग बढ़नेकी आशासे पूर्व स्तरपर डटे हुये थे वनस्पतिमें लिवाली कमजोर बताई गयी। आवक घटनेसे एम पी की कजली सरसो नयी ५८० रु. पर मजबत रहा।

स्थानीय मंडीमें आज भाव इस प्रकार रये।

सरसों ५५०-५८०, बिनौला ३२०-४०५, तिल ७२५-८७५, तारामीरा ४००-५७५, हाल सरसो १६५-१७५, बिनौला २१२-२१५, मूंगफली ५५०-७७०।

तेल कीमतें ... सोयाबीन रिफान्ड ३१५-३२६, बिनौला मिल डिलीवरी १६१०, महुआ १६५०-१८००, गोला ५८५, अलसी १६१०-१६२०, अरण्डी १४८०-१४९०, नीमल ११५०-११६०, चावल छिलकेका तेल १०७०-१०८०,

गुड़ ढीला

दिल्ली, २१ जनवरी ऊंचे स्तरपर पंजाब, राजस्थानके स्टोरियोंकी लिवाली कुछ घट गयी लेकिन कोटा कम आनेकी आशंकासे मिल डिलीवरी चीनी पलिया ५५८ से बढ़कर ५६२ रु. हो गयी। चीनीके समर्थनमें खांडसारी भी १० रु. बढ़ गयी लेकिन गुड़ ५ रु. ढीला रहा।

स्थानीय मण्डीमें आज भाव इस प्रकार रहे।